पिंगल-प्रबोध

विद्यार्थियों के लिए छंदशास्त्र-सम्बन्धी
उपयोगी पुस्तक

लेखक
श्री० पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र, 'निर्मल'
[भू० पू० सम्पादक 'मनोरमा',
संयुक्त सम्पादक 'भारत']

प्रकाशक
रघुनन्दन शर्मा
हिन्दी प्रेस, प्रयाग

प्रथम संस्करण] १९३१ [मूल्य ॥)

प्रकाशक,
रघुनन्दन शर्म्मा,
हिन्दी प्रेस, प्रयाग

मुद्रक,
रघुनन्दन शर्मा
हिन्दी प्रेस, प्रयाग

भूमिका

आजकल अध्यापकों, विद्यार्थियों और नवयुवकों की रुचि काव्य-रचना की ओर अग्रसर हो रही है। उन्हें पग पग पर ऐसी पुस्तकों के पढ़ने की इच्छा होती है जिसमें छंदशास्त्र-सम्बन्धी, नियमों, उपनियमों तथा उपयोगी विचारों का समावेश हो और जिसके पढ़ने से उन्हें पिंगल-सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान हो जाय। इसी विचार को सामने रख कर इस पुस्तक की रचना की गई है। प्रस्तुत पुस्तक तीन अंशों में विभक्त है। प्रथम अंश में काव्य-रचना के प्रेमियों को प्रारंम्भिक जानकारी के लिए यति, लघु-गुरु, गण, शुभाशुभ अक्षर, तुक, भाषा, भाव, रस, गुण, दोष, शब्द-योजना, उपमा, और नखशिख, आदि विषयों पर उपयोगी बातें लिखी गई हैं। नये कवियों के लिए कुछ आदेशात्मक बातें भी लिखी गई हैं। दूसरे अंश में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मात्रिक और वर्णिक छंदों के लक्षण और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध हिन्दी के कवियों द्वारा लिखे हुए उदाहरण दिये गये हैं। तीसरे अंश में प्रस्तार सम्बन्धी आवश्यक बातों का उल्लेख किया गया है। यह अंश स्वर्गीय बाबू देवीप्रसाद 'पूर्ण' का लिखा हुआ है। यह अंश पहले 'रसिक मित्र' में प्रकाशित हो चुका है।

इस प्रकार पुस्तक की उपयोगिता पर काफ़ी ध्यान रखा गया है। हिन्दी में पिंगल सम्बन्धी और भी पुस्तकें हैं। उनमें बाबू जगन्नाथप्रसादजी 'भानु' का 'छंदप्रभाकर' सर्वोत्तम है। परन्तु वह बड़ा और विस्तृत इतना है कि प्रायः विद्यार्थी उससे आसानी से छंद सम्बन्धी बातें समझ कर लाभ नहीं उठा सकते। यदि विद्यार्थियों और नवसिख पद्य-रचयिताओं को इस पुस्तक से कुछ भी लाभ पहुँचा और उनकी छंद सम्बन्धी जानकारी की वृद्धि हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

प्रयाग
२४-६-३१

ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

विषय-सूची

पिंगल-प्रबोध

छंद और पिंगल

वेदों के छः अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द माने गये हैं। इनमें छन्द सब से प्रधान माना गया है। इस छंदशास्त्र के लिखने वाले पिंगलाचार्य्य नामक एक मुनि थे। क्योंकि पिंगल-सूत्र-वृत्ति लिखने वाले हलायुध ने लिखा है कि "वेदानां प्रथमांगस्य कवीनां नयनस्य च, पिंगलाचार्य सूत्रस्य, मयावृत्तिर्विधास्यते", अर्थात् मैं वेदों के प्रधान अंग और कवियों के नेत्र रूपी पिंगलाचार्य्य कृत्त छंद-सूत्र की वृत्ति बनाता हूँ। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि छंदः-शास्त्र के जानने और उसे समझने की विशेष आवश्यकता है।

'छंद' नाम "छदि' (आच्छादने) धातु से बना है। वेदों में ऐसा कहा गया है कि पूर्वकाल में आदित्य आदि देवताओं ने मृत्यु के भय से भयभीत होकर गायत्री आदि

मंत्रों के द्वारा अपने-अपने शरीर को ढक रखा था। उसी समय से इन्हीं मंत्रों को 'छंद' कहने लगे। प्राचीन-काल के संस्कृत के ग्रन्थ सभी छंदोबद्ध हैं। छंदों का याद रखना सरल है। इसीलिए इसका प्रचार भी अच्छा हुआ। गद्य का प्रचार पहले तो था ही नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीनकाल में लोग पद्यों में ही बातचीत भी करते थे, क्योंकि उन दिनों के लिखे हुए वेद, शास्त्र, उपनिषद् और महाकाव्य सब छंदो-बद्ध हैं। इसीलिए इसका अस्तित्व पूर्णरूप से स्थिर हो गया। हिन्दी में आज उसी सिद्धान्त पर काव्य-रचना हो रही है।

पद्य क्या है ?

हिन्दी भाषा में वाक्यों की रचना दो प्रकार से की जाती है। एक का नाम है गद्य और दूसरे का पद्य। गद्य उस रचना को कहते हैं जिसमें विराम, अर्द्ध विराम, व्याकरण आदि के नियमों का पालन तो किया जाता हो; परन्तु गति, प्रवाह, क्रम का कोई नियमित नियम उसके लिए आवश्यक न हो। तात्पर्य यह है कि आजकल मौखिक रूप से लोग जो बात बोलते हैं यदि उसी को लिख लिया जाय तो वही गद्य कहलाता है। पद्य उस रचना को कहते हैं जिसमें विराम, अर्द्ध विराम, व्याकरण आदि के नियम अधिक आवश्यक नहीं समझे जाते; परन्तु यति, गति, प्रवाह, मात्रा, वर्ण, तुकान्त, के नियमों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक होता है। अर्थात् मात्रा या

अक्षर के नियमों द्वारा जो पद-योजना की जाती है उसे पद्य कहते हैं। पद्य की रचना करने में व्याकरण के नियमों को शुद्ध रूप से पालन यदि न किया जाय तो वह दोष नहीं समझा जाता। परन्तु गद्य में यदि ऐसा न किया जाय तो वह दोषयुक्त माना जाता है।

पद्य-गद्य का भेद

पद्य और गद्य में अनेक भेद होते हैं। पढ़ने वाले इसे भली भाँति समझ सकते हैं। पद्य का सम्बन्ध संगीत से होता है और गद्य का नहीं। पद्य में बहुत थोड़े से शब्दों में अधिक बातें कही जा सकती हैं और गद्य में अधिक शब्दों के प्रयोग द्वारा मुख्य विषय समझ में आता है। पद्य पढ़ने में सुलभ और हृदय में आनंद पैदा करनेवाला होता है परन्तु गद्य में यह गुण नहीं है। पद्य में एक प्रकार का तुकान्त और क्रम होता है जो प्राणिमात्र को प्रिय लगता है और गद्य में ऐसा नहीं। पद्य जल्दी कंठस्थ हो जाता है और गद्य नहीं। पद्य के द्वारा समाज-सुधार, लोक, कल्याण, वीरभाव का प्रचार आसानी हो सकता है, परन्तु गद्य द्वारा कठिनाई से होता है।

अक्षर और मात्रा

अक्षर दो प्रकार के होते हैं, दीर्घ और ह्रस्व। दीर्घ को गुरु और ह्रस्व को लघु भी कहते हैं।

अक्षरों के उच्चारण करने में जो समय लगता है उसका नाम मात्रा है ।

ह्रस्व अक्षर जैसे—अ, इ, उ, ए, क, ल, लि, स, ह आदि में एक मात्रा की गणना होगी। दीर्घ अक्षर जैसे आ, ई, ऊ, ऐ, ओ, औ, अं, का, ला, सी, पू आदि में दो मात्राओं की गणना होगी। इसका कारण यह है कि किसी भी ह्रस्व अक्षर का जब हम उच्चारण करते हैं तब उसमें कम समय लगता है। दीर्घ शब्द के उच्चारण में ह्रस्व की अपेक्षा अधिक लगता है। इसीलिए ह्रस्व अक्षरों में एक और दीर्घ अक्षरों में दो मात्रायें पिंगल के आचार्यों ने मानी हैं।

उदाहरण–राजा अभी ठहरा है। इस वाक्य में 'रा' 'जा' 'भी' और 'रा' 'है' अक्षर दीर्घ हैं । इनके उच्चारण करने में समय अधिक ख़र्च होता है । ह्रस्व अक्षर 'अ' 'ठ' और 'ह' के उच्चारण में समय कम लगता है। 'राजा' शब्द में दो अक्षर हैं, और दोनों दीर्घ हैं । इसलिए इस शब्द में चार मात्रायें हुईं । 'अभी' शब्द में पहला अक्षर ह्रस्व और दूसरा दीर्घ है। इसलिए इसमें तीन मात्राओं की गिनती होगी। 'ठहरा' शब्द में तीन अक्षर हैं। पहला-दूसरा अक्षर ह्रस्व है और तीसरा दीर्घ, इसलिए इसमें चार मात्रायें हुईं ।

प्रायः पद्य-रचना में अनुस्वार और विसर्ग की दो मात्रायें मानी जाती हैं। जैसे—'शंकर' 'रङ्ग' और 'तरंग' शब्द लीजिए।

'शंकर' शब्द में तीन अक्षर हैं। 'श' के ऊपर चूँकि अनुस्वार लगा है इसलिए इसमें दो मात्रायें मानी जायँगी और 'क' 'र' अक्षर ह्रस्व हैं, इसलिए प्रत्येक में एक-एक मात्रा मानी जायगी। इस प्रकार इस शब्द में चार मात्रायें हुईं। इसी प्रकार 'रंग' शब्द में तीन और 'तङ्ग' शब्द में चार मात्राओं की गणना होगी।

जिस अक्षर के ऊपर चन्द्रविन्दु होगा, पिंगल-शास्त्र के अनुसार उसमें एक ही मात्रा की गणना होगी। जैसे 'फँसना', 'चाँदनी' और 'बाँचना' शब्द को लीजिए। 'फ' अक्षर के ऊपर यद्यपि चन्द्रविन्दु है, परन्तु यह ह्रस्व ही माना जायगा। 'स' अक्षर ह्रस्व है इसलिए इसमें एक मात्रा और 'ना' दीर्घ है इसलिए इसमें दो मात्रायें मानी जायँगी, अर्थात्, फँसना, शब्द में कुल चार मात्रायें हुईं।

पिंगल के आचार्य्यों के मतानुसार जिस शब्द में किसी अक्षर के साथ संयुक्त अक्षर लगा होता है, उसके पहले का अक्षर यदि ह्रस्व हुआ तो वह दीर्घ समझा जाता है। उसमें दो मात्रायें गिनी जाती हैं। जैसे 'सत्य' 'अन्धा' और 'मिथ्या'। 'सत्य' शब्द में 'य' में आधा त अक्षर लगा हुआ है। इसलिए उसके पहले का अक्षर 'स' ह्रस्व होते हुए भी दीर्घ माना जायगा। 'अन्धा' शब्द में 'धा' में आधा न लगने से 'अ' की दीर्घ अक्षर में गणना होगी। इसी प्रकार मिथ्या, शब्द का 'मि' यद्यपि ह्रस्व है, परन्तु इसके बाद संयुक्त अक्षर है

इसलिए यह दीर्घ अक्षर माना जायगा। परन्तु जब कभी किसी संयुक्त अक्षर के पहले कोई दीर्घ अक्षर होगा तब वह दीर्घ ही समझा जायगा और उसमें दो मात्रायें ही गिनी जायँगी। जैसे 'भाग्य'। इस शब्द के 'य' अक्षर के आगे आधा 'ग' है और उसके पहले 'भा' है। परन्तु 'भा' के आगे का अक्षर यद्यपि संयुक्ताक्षर है तो भी 'भा' में दो मात्राओं की गणना की जायगी। कभी कभी ऐसे शब्द भी पढ़ते समय मिल जाते हैं जिनमें प्रयुक्त अक्षर देखने में तो दीर्घ रहते हैं परन्तु उच्चारण में वे ह्रस्व समझे जाते हैं। और कोई अक्षर ह्रस्व रहते हैं परन्तु उच्चारण में दीर्घ माने जाते हैं। ऐसे स्थानों पर कवि अपनी सुविधानुसार दीर्घ और लघु का निर्णय करता है। जैसे कार्य्य-क्रम। इसमें 'य' अक्षर को दीर्घ भी पढ़ सकते हैं और ह्रस्व भी।

लघु-गुरु

पिंगल में लघु-गुरु का विचार बहुत ही आवश्यक है। एक मात्रा वाले अक्षर लघु और दो मात्रावाले दीर्घ माने जाते हैं। लघु का चिह्न है एक खड़ी पाई (।) और दीर्घ का चिह्न है (ऽ)। इसी प्रकार अँगरेज़ी का 'एस' भी लिखा जाता है। उदाहरण के लिए—

राम राम जय राम पुकारो।
ऽ। ऽ। ।। ऽ। ।ऽऽ

किसी भी पद्य में जब हम यह जानना चाहें कि कितनी मात्रायें हैं तब ऊपर की तरह पद्य लिखकर प्रत्येक अक्षर के नीचे या ऊपर, दीर्घ और लघु का ध्यान रखकर चिह्न लगाकर गिन लेना चाहिए। कवि स्वतंत्र होते हैं इसलिए वे अपनी सुविधानुसार दीर्घ और लघु का निर्णय करते हैं। वे प्रायः यह निर्णय उन्हीं शब्दों के साथ करते हैं जो प्राचीनकाल से प्रचलित हैं। जैसे—

को प्रभु सँग मोहिं चितवन हारा।

इस छंद में "सँग" शब्द है। इसका शुद्ध है "संग", परन्तु इस तरह के प्रयोग को दोष नहीं माना गया। कभी कभी कवि ऐसा लिखते हैं जो देखने में तो दीर्घ रहता है परन्तु उसकी गणना ह्रस्व में होती है। जैसे उक्त छंद में "मोहिँ" शब्द है। देखने में 'मोहिँ' में "मो" दीर्घ है परन्तु पढ़ते समय इस का उच्चारण जल्दी होता है इसलिए यह 'ह्रस्व' माना जायगा।

यति

पिंगल के नियमानुसार पद्यों को पढ़ते समय जहाँ रुकना पड़ता है उसे यति, विश्राम अथवा विराम कहते हैं। जैसे—

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात॥

इस छन्द में 'रहिमन याचकता गहे' के पढ़ने के बाद कुछ रुक जाना पड़ता है इसलिए यहाँ यति अथवा विराम लग गया है।

किसी किसी छन्द के पद में एक से अधिक यति मानी जाती हैं, क्योंकि उसे पढ़ते समय कई स्थानों पर रुकना पड़ता है। जैसे—

भे प्रगट कृपाला, दीनदयाला, कौशिल्या-हितकारी।

इस छन्द को पढ़ते समय 'भे प्रगट कृपाला', 'दीनदयाला' के बाद रुकना पड़ता है इसलिए इसमें दो विराम माने गये हैं। विरामों की संख्या छन्दों के नियमों पर भी लागू होती है।

किसी किसी छन्द में, जहाँ यति रक्खी जाती है, वहाँ यति न होकर इधर उधर हो जाने से यति-भंग-दोष माना जाता है। जैसे—

"लाल कमल जीत्यो सुवृष,-भानलली के चर्ण"

इस पद में "वृषभानलली" एक शब्द है। परन्तु यति के लिये 'वृष' एक ओर और 'भान' दूसरी ओर चला जाता है।

गति

किसी भी छंद को पढ़ने के लिए एक प्रकार के प्रवाह की आवश्यकता होती है उसी को गति कहते हैं। इसके लिए पिंगल के आचार्य्यों ने कोई ख़ास नियम नहीं बनाया, वरन् इसका जानना कवि तथा पढ़नेवालों पर निर्भर है। अभ्यास से गति भलीभाँति जानी जा सकती है जैसे—

वर्षा विगत शरद ऋतु आई।
लछिमन देखहु परम सुहाई॥

इसको यदि हम इस प्रकार लिखें--

वर्षा शरद् ऋतु विगत आई।
लछिमन परम देखहु सुहाई॥

तो पढ़ते समय एक प्रकार की कठिनाई, असुविधा और प्रवाह-हीनता प्रकट होती है। यद्यपि छंद के नियमानुसार ऊपर के शुद्ध और नीचे के अशुद्ध छंद में मात्रायें ठीक हैं। इसलिए जिस छंद में पढ़ने में असुविधा हो वहाँ गतिभंग दोष माना जायगा।

गण

तीन अक्षरों के एक समूह का नाम गण होता है। आदि, मध्य और अन्त के अक्षरों के लघु-गुरु के विचार से गण के आठ भेद माने गए हैं। प्रत्येक के लक्षण निम्नलिखित हैं—

गण	चिह्न	उदाहरण
मगण	SSS	दीवाना
नगण	।।।	वसन
भगण	S।।	बाँदर
यगण	।SS	सुशीला
जगण	।S।	विवेक
रगण	S।S	जानना
सगण	।।S	मनका
तगण	SS।	भंडार

इसको कंठस्थ करने के लिए नीचे लिखा सूत्र उपयुक्त होगा।

"यमाताराजभानसलगम्"

इसमें आठों गणों के सांकेतिक नाम तथा उनके रूप भी हैं। य (यगण) मा (मगण) ता (तगण) रा (रगण) ज (जगण) भा (भगण) न (नगण) स (सगण) ये आठ गण हैं और ल (लघु) और ग (गुरु) का द्योतक है। इस सूत्र में जिस गण को पहचानना हो उसी अक्षर के साथ वाले आगे के दो अक्षर को मिलाने से वह गण बन जायगा। जैसे यगण को पहचानने के लिए उक्त सूत्र के आदि अक्षर 'य' के साथ आगे के 'मा' और 'ता' को मिलाइये। इसलिए पूरा शब्द "यमाता" हुआ। इसमें आदि का अक्षर लघु, बीच का गुरु और अंत का गुरु है। अर्थात् (।SS) यगण हुआ। इसी प्रकार जगण को लीजिए। पूरा शब्द हुआ 'जभान' इसमें 'ज' लघु, 'भा' गुरु और 'न' लघु है अर्थात् (।S।) जगण हुआ।

(२) एक प्रकार से गणों की पहचान और भी की जा सकती है—

आदि मध्य अवसान में, भ ज स होहिं गुरु जान।
य र त होहिं लघु क्रमहि सों, म न गुरु लघु सम मान॥

अर्थात् जिस शब्द के आदि में केवल गुरु हो उसे भगण, और जिस शब्द के मध्य में केवल गुरु हो उसे जगण और

जिस शब्द के अन्त में केवल गुरु हो उसे सगण कहते हैं। इसी क्रम के अनुसार जिस शब्द का आदि अक्षर केवल लघु हो उसे यगण, जिसके मध्य में केवल लघु हो उसे रगण और जिसके अन्त में केवल लघु हो उसे तगण कहते हैं। मगण में तीनों अक्षर गुरु और नगण में तीनों अक्षर लघु होते हैं।

(३) कंठस्थ करने के लिए गणों के नियमों का एक छन्द इस प्रकार है।

मगणस्त्रिगुरू त्रिलघू नगणां,
भगणादि गुरू यगणादि लघू।
गुरु मध्य गज लघु मध्य गर,
सगणन्त गुरू तगड़न्त लघू॥

इस छंद का अर्थ स्पष्ट है। मगण में तीन गुरु, नगण में तीन लघु, भगण के आदि में गुरु, यगण के आदि में लघु, (गज) जगण के मध्य में गुरु (गर) रगण के मध्य में लघु, सगण के अन्त में गुरु और तगण के अन्त में लघु होता है।

देवता और फल

प्रत्येक गणों के भिन्न-भिन्न देवता और फल होते हैं। एक छंद नीचे दिया जाता है। इसमें गण का नाम, देवता और उसका फल लिखा हुआ है।

मगण पृथ्वी तासु फल श्री, यगण जल आयुप्रदं।
रगण पावक दाहता फल, सगण वायु विदेशदं॥

तगण व्योम तु शून्य फल-युत, जगण आदित रुजफलं।
नगण स्वर्ग सदा सुखप्रद, भ शशि देवै यश फलं॥

किस गण का देवता कौन है, और उसका फल क्या होता है, नीचे के कोष्ठक से और भी स्पष्ट हो जायगा—

गण	देवता	फल
यगण	जल	आयु
मगण	पृथ्वी	लक्ष्मी
भगण	चन्द्रमा	यश
नगण	स्वर्ग	सुख
जगण	सूर्य्य	रोग
रगण	अग्नि	दाह
सगण	वायु	विदेश
तगण	आकाश	शून्य

इन आठों गणों में यगण, मगण, भगण और नगण शुभ और जगण, रगण, सगण और तगण अशुभ माने गये हैं। आचार्य्यों का मत है कि किसी भी छंद के प्रारंभ में तीन अक्षरों में शुभ-अशुभ गणों पर ध्यान दिया जाता है। वैसे पद में कहीं भी शुभ-अशुभ गणों के प्रयोग का कोई ख़याल नहीं किया जाता। परन्तु छंद का प्रथम अक्षर या शब्द यदि मंगलवाची या देवता सम्बन्धी हो और वह अशुभ भी हो तो भी वह दूषित नहीं माना जायगा। कहीं कहीं अशुभ अक्षर को दीर्घ कर देने पर

भी दोष मिट जाता है। गणों के शुभ अशुभ का विचार मात्रिक छंदों में किया जाता है वर्णिक छंदों में नहीं । परन्तु वर्णिक छंदों में भी यदि प्रारंभ में जगण, रगण, सगण और तगण प्रयुक्त किये जायँ तो उन्हें मंगलवाची होना चाहिए, तब उनका दोष-निवारण होता है।

शुभाशुभ अक्षर

छंदों के लिखने में शुभाशुभ अक्षरों पर भी ध्यान दिया जाता है। स्वर सभी शुभ माने गये हैं। व्यंजनों में कुछ अक्षर अशुभ और बाकी शुभ माने गये हैं । शुभ अक्षरों में क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ड, द, ध, न, श, स, क्ष, और अशुभ अक्षरों में ङ, झ, ञ, ट, ठ, ढ, ण, त, थ, प, फ, ब, भ, य, र, ल, व, और ष, माने गये हैं। अशुभ अक्षरों में झ, ह, र, भ, और ष, ये पाँच अक्षर महादूषित माने जाते हैं। इन्हें दग्धाक्षर भी कहते हैं । कविता बनाने वाले सदा इन अक्षरों के प्रारम्भिक प्रयोग से बचते हैं। कविता के प्रारंभ में किन अक्षरों के प्रयोग से क्या फल होता है, इसका विवरण नीचे लिखा जाता है—

अ आ के प्रयोग से	सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।
इ ई ”	सुख ”
उ ऊ ”	धन ”
ऋ ”	अशुभ फल मिलता है।
ए ऐ ”	सिद्धि प्राप्ति होती है।
ओ औ ”	शुभ है।

अः के प्रयोग से		मित्रता प्राप्त होती है।
क, ख, ग, घ,		लक्ष्मी की प्राप्ति होती है
ङ	”	अपयश की प्राप्ति होती है।
च	”	आनंद मिलता है।
छ	”	प्रेम उत्पन्न होता है।
ज, झ	”	भय उत्पन्न होता है।
ट ठ	”	दुःख की प्राप्ति होती है।
ड का प्रयोग		सौन्दर्य्य और शोभा-बढ़ाता है।
ढ का प्रयोग		सुन्दरता को नष्ट करनेवाला है।
ण	”	भ्रम उत्पन्न करता है।
त	के प्रयोग से	शरीर में तेज पैदा होता है।
थ	का प्रयोग	युद्ध कराता है।
द ध	”	धीरज बँधाता है।
न	”	सुखदायी है।
प, फ, ब, भ, म, का प्रयोग		भय उत्पन्न करता है।
य का प्रयोग भी		आनन्द देने वाला है।
र के प्रयोग से		क्रोध बढ़ता है।
ल, व, के प्रयोग से		संघर्ष उत्पन्न होता है।
श का प्रयोग		श्रीसे युक्त करता है।
ष का प्रयोग		हानि कारक है।
स का प्रयोग		सम्पति का बढ़ाने वाला है।
ह के प्रयोग से		हानि होती है।

अशुभ अक्षरों का दोष नर-काव्य में ही माना जाता है। परन्तु आदर्शवादी, देवता वाची शब्दों के साथ इनका दोष नहीं माना जाता।

तुक

प्राचीन काल से हिन्दी के कवि तुक की ओर विशेष ध्यान रखते आए हैं। संस्कृत के कवियों ने प्रायः अतुकान्त छंद ही लिखे हैं। इसमें संदेह नहीं कि तुक किसी भी छंद की मधुरता का पूर्णरूप से द्योतक है। जो लोग छंदःशास्त्र या पिंगल नहीं जानते या जो काव्य-मर्मज्ञ भी नहीं हैं उन्हें भी तुक बहुत प्रिय और उनके कानों में मधुरता डालनेवाला है। हिन्दी के अनेक प्राचीन कवियों ने भी तुकों के एकीकरण में ढिलाई दिखाई है। प्रायः ऐसे कवियों ने, जिन्होंने आवेश में आकर कवितायें रची हैं, उन्होंने श्रेष्ठ तुकों के मिलाने की परवाह नहीं की। तुक एक प्रकार से सुनने में मधुर जान पड़ता है, और संगीत से भी इसका सम्बन्ध है, इसीलिए हिन्दी के अच्छे से अच्छे कवियों ने कविता लिखते समय तुकों का ख़ूब ध्यान रक्खा है। यद्यपि संस्कृत कवियों ने तुक मिलाने का विशेष प्रयत्न नहीं किया है परन्तु जहाँ कहीं उनकी रचनाओं में तुकान्त एक सा हो गया है वहाँ, वह बहुत ही मधुर हो गया है। संस्कृत के महाकवि जयदेव की कविता इसका सुन्दर उदाहरण है।

उर्दू कवियों ने भी तुकों के मिलाने का कोई ख़ास प्रयत्न नहीं किया। इससे कहीं कहीं उनके शेरों में उतनी मधुरता पढ़ते समय नहीं आती, जितनी की तुकान्त वाली शेरों में मिलती है। परन्तु उर्दू में अतुकान्त काव्य-रचना करने की एक प्रथा सी चल पड़ी है, इसलिए लोग सुनते-सुनते आदी हो गए हैं; और उन्हें अतुकान्त छंद ही में आनंद मिलता है। जैसे—

लोग कहते हैं कि आप निहायत क़ाबिल।
मैं इसी सोच में रहता हूँ कि किस क़ाबिल हूँ॥

—अकबर

*　　　*　　　*

इस छंद में तुकान्त न मिलने से मधुरता कम हो गई है। दूसरा छंद देखिये—

भलाई को न भूलेंगे, सुशिक्षा को न छोड़ेंगे।
हठीले प्राण खो देंगे, प्रतिज्ञा को न तोड़ेंगे॥
बढ़ेंगे प्रेम के पौदे, दया के फूल फूलेंगे।
भरे आनंद से चारों, फलों के झाड़ झूलेंगे॥

—नाथूराम शंकर शर्मा

इसमें तुकान्त मिलने से मधुरता बढ़ गई है।

आजकल हिन्दी में भी अतुकान्त कविता में कुछ नये कवि छंद लिखने लगे हैं। बंगला में श्री० रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि ने भी अनेक छंद लिखे हैं। इनके छंदों में भाव चाहे जितने ऊँचे

हों परन्तु कानों में उतना आनंद नहीं प्राप्त होता जितना तुकान्त छंदों के सुनने में।

किसी भी छंद के अंत में, जा बरावर के मिलते हुए स्वर होते हैं, उन्हीं का नाम तुक है। तुक तीन प्रकार के होते हैं। उत्तम, मध्यम, निकृष्ट। जैसे—

उत्तम—संत असंत परम तुम जानहु।
तिन कर सजह सुभाव बखानहु॥

इस पद्य में 'जानहु' और 'बखानहु' का तुक बहुत सुन्दर है और पढ़ने में बड़ा मधुर जान पड़ता है। इससे अच्छा तुक और हो नहीं सकता।

मध्यम—कवन पुन्य श्रुति विदित विशाला।
कहहु कवन अघ परम कराला॥

इस छंद में 'विशाला' और 'कराला' का तुक सुनने में कम मधुर है। क्योंकि 'शाला' और 'राला' का अच्छा तुक होते हुए भी 'वि' और 'क' का तुक ठीक नहीं है।

निकृष्ट—महा तुच्छ यम कोटि तिहारे आगे पुत्री।
सती-सिरोमनि उभय लोक मँह तुही भवित्री॥

इस छंद में 'पुत्री' और 'भवित्री' का तुक बिलकुल भद्दा है। सुनने में भी यह कर्ण-कटु जान पड़ता है।

किसी-किसी पद्य में तीन-तीन अक्षरों तक तुक मिलता है। इसलिए उसमें भी उत्तम, मध्यम और निकृष्ट को गणना होती है। जैसे—

उत्तम—पात भरी सहरी सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछु वेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरी याहि लागि राजा जी हौं,
दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं॥
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरेगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै के वाद न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोये नाथ नाव न चढ़ाइहौं॥
—तुलसीदास

इस छंद में प्रत्येक पद के अन्त में 'ढाइहौं' तीन अक्षरों का पूर्ण तुक मिला है। इसलिए यह सर्वश्रेष्ठ तुक माना जायगा।

मध्यम—रावरे दोष न पायन को,
पग धूरि को भूरि प्रभाव महा है।
पाहन ते बरु बाहन काठ को,
कोमल है जल खाइ रहा है॥
तुलसी सुनि केवट के वर बैन,
हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है।
पावन पाय पखारि के नाव,
चढ़ाइ हौं आयसु होत कहा है॥
—तुलसीदास

इस छंद के प्रत्येक पद में दो-दो अक्षरों का तुक मिलाया गया है। इसलिए यह मध्यम श्रेणी का तुक माना जायगा।

निकृष्ट—खिले नेवाड़ी फूल, रंग अति लगैं मनोहर।
नील कमल से हरित, डार कूजत खग सुन्दर॥

इस छंद के अंतिम पद में केवल एक अक्षर का तुक मिलता है। इसलिए यह निकृष्ट तुक कहलाता है।

कहीं-कहीं छंदों में ऐसे भी तुक देखे जाते हैं, जो कहने को तो तुकान्त कहे जाते हैं परन्तु देखने में उनमें कोई तुक ही नहीं जान पड़ता। ऐसे तुकों को महा निकृष्ट तुक कहते हैं। तुकान्त के नाम पर ऐसी रचनायें न लिखनी चाहिएँ। जैसे—

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे,
धनु कांधे धरे धनु सायक लै।
विकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ,
अनमोल कपोलन की छवि है॥
तुलसी अस मूरति आनि हिये,
जड़ डारु दै प्राण निछावर कै।
श्रम सीकर साँवरि देह लसै,
मनो राबि महातम तारक मैं॥

—तुलसीदास

इस छंद के अंतिम चरणों में क्रम से लै, है, कै और मैं का तुक मिलाया गया है। परन्तु इनमें तुक तनिक भी नहीं मिलता।

छंद और उसके भेद

जिस रचना में मात्रा, विराम, गति और यति संबंधी नियम पाये जायँ उन्हें छंद कहते हैं। छंद दो प्रकार के होते हैं। १—मात्रिक २—वर्णिक। प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं। इन चरणों को पद या पाद भी कहते हैं।

जिन छंदों में मात्रा की गणना की जाती है उसे मात्रिक कहते हैं और जिन छंदों में वर्णों की गणना की जाती है उसे वर्णिक कहते हैं।

मात्रिक—वर्षा विगत शरद ऋतु आई।
लछमन देखहु परम सुहाई॥
फूले काँस सकल महि छाई।
जनु वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई॥

—तुलसीदास

इस छंद के प्रत्येक चरण में सोलह मात्रा हैं इसलिए यह मात्रिक छंद माना जाता है।

वर्णिक—जय राम रमा रमनं शमनं।
भव ताप भयाकुल पाहि जनं॥
अवधेश सुरेश रमेश विभो।
शरणागत पालक पाहि प्रभो॥

इस छंद के प्रत्येक पद में चार सगण (॥ ऽ) हैं। इसलिए यह वर्णिक छंद हुआ।

मात्रिक, और वर्णिक छंदों के तीन उपभेद भी होते हैं। १—सम, २—अर्द्धसम और ३—विषम।

जिस छंद में चारों पद एक से हों और उनकी मात्राओं तथा वर्णों में समानता पाई जाती हो उसे सम छंद कहते हैं। जैसे—

प्रवल अविद्या कर परिवारा।
मोह आदि तव मिटै अपारा॥
तव सोइ बुद्धि पाइ उजियारा।
उर-गृह बैठि ग्रंथ निरवारा॥

—तुलसीदास

जिस छंद के पहले-तीसरे और दूसरे-चौथे पद में बराबर मात्रा हों वे अर्द्धसम छंद कहलाते हैं। जैसे—

रहिमन वे नर मर चुके, जो कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥

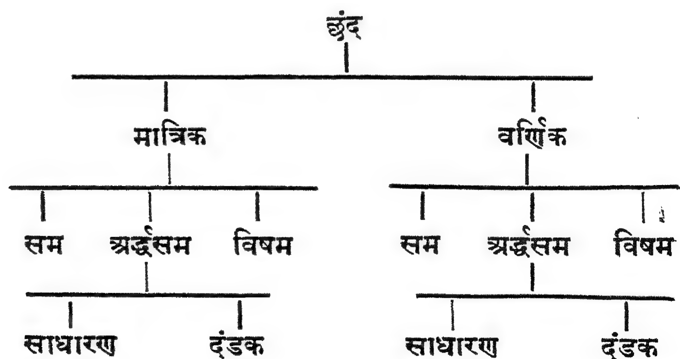
यह दोहा छंद है। इसके पहले और तीसरे पद में १३ और दूसरे और चौथे पद में ११ मात्रायें हैं। इसी प्रकार सोरठा छंद भी अर्द्धसम कहलाता है।

जिस छंद में चार पदों से अधिक पद होते हैं उसे विषम छंद कहते हैं। जैसे—

नेही जनि निषाद नीच छाती सों लायो।
लछमन सम प्रिय भाखि प्रेम सों हियो जुड़ायो।

स्वाद बखानि बखानि भिल्लनी के फल खाये।
निज कर नेक जताहि दाह की आगे धाये।
परस्यो कर सीस जटायु निज, धाम ताहि छिन में दयो।
जय पवन सुवन की प्रीति लखि, अंग अंग पुलकित भयो॥

सम छंद के भी दो भेद माने गए हैं। १—साधारण और २—दंडक। जिन मात्रिक सम छंद के प्रत्येक चरण में ३२ मात्रायें होती हैं वे साधारण और जिनमें ३२ से ज़्यादा मात्रायें होती हैं वे दंडक कहलाते हैं। इसी प्रकार वर्णिक छंदों के लिए भी माना गया है। जिन वर्णिक छंदों के प्रत्येक चरण में २६ या इससे कम अक्षर रहते हैं उन्हें साधारण और जिनमें इससे अधिक अक्षर होते हैं वे दंडक कहलाते हैं। नीचे लिखे हुए फलक से छंद, उसके भेद और उपभेदों का ज्ञान भली भाँति हो जायगा।



छंदों को पहचानने के लिए निम्नलिखित दोहा याद कर लेना चाहिए—

लघु-गुरु चारों चरण में, क्रम तें मिलें समान।
वर्णिक है वह अन्यथा, मात्रिक छंद प्रमान॥

अर्थात् जिस छंद के चारों चरणों में लघु और गुरु क्रम से मिलते हों उसे वर्णिक और जिस पद में लघु-गुरु का कोई विचार न हो, केवल मात्रायें एक समान हों, उसे मात्रिक छंद कहना चाहिए।

भाषा

आजकल हिन्दी में कविता करनेवाले दो प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हैं। व्रजभाषा और खड़ीबोली। हिन्दी का प्राचीन काव्य-साहित्य प्रायः व्रजभाषा में ही लिखा गया है। महात्मा सूरदास ऐसे व्रजभाषा में उत्कृष्ट कवि होगए हैं। परन्तु भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय के बाद से खड़ीबोली की रचना का प्रारंभ हुआ है। खड़ीबोली की काव्य-रचना को प्रोत्साहन देने में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने बड़ा काम किया है। इस समय भी व्रजभाषा में कई कवि कविता करते हैं; परन्तु उनकी संख्या थोड़ी है। खड़ीबोली में रचना करनेवालों की संख्या अधिक है और प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

वर्तमान समय में व्रजभाषा की कविता का प्रचार कम हो जाने के अनेक कारण हैं, उनमें से मुख्य यह है कि यह एक ख़ास प्रांत की बोली है; इसलिए जल्दी सब नहीं समझ सकते। खड़ीबोली भी यद्यपि प्रान्तीय बोली है परन्तु उसे अन्य प्रान्त वाले आसानी से समझ सकते हैं। कहना तो यों चाहिए कि बोलचाल ही की भाषा खड़ीबोली है। परन्तु कविता लिखने की दृष्टि से व्रजभाषा अधिक उपयुक्त भी है। इसका पहला कारण यह है कि इस भाषा में मधुरता की पुट अधिक है। दूसरे व्रजभाषा में एक विशेषता यह भी है कि इस भाषा में थोड़े ही शब्दों के प्रयोग से अधिक बातें कही जा सकती हैं। तीसरे इसमें क्रियाओं के प्रयोग का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है तथा शब्दों को प्रयोग करने की भी पूरी स्वतंत्रता है। जैसे—

अस्त्र गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवे के,
उतते पठाननहू कीन्ही झुकि झपटैं।
हिम्मत बड़ी के गबड़ी खिलवारन की,
देत सै हजारन हजार बार चपटैं॥
भूषन भनत काली हुलसी असीसन को,
सीसन को ईस की जमाति जोर जपटैं।
समद लौं समद की सेना त्यों बुंदेलन की,
सेलैं समसेरैं भई बाडव की लपटैं॥

यह छंद ब्रजभाषा का है। यह मधुर भी है तथा इसमें शब्दों का प्रयोग कम हुआ है। 'झुकि झपटैं' को यदि हम खड़ी बोली में लिखें तो 'झुक करके झपटते हैं', लिखना शुद्ध होगा परन्तु ब्रजभाषा में केवल दो शब्दों के प्रयोग से काम चल गया है।' जमाति जोर जपटैं', और 'असीसन' आदि शब्द भी ऐसे ही हैं। छंद में 'झपटैं' 'चपटैं' 'जपटैं' और 'लपटैं' क्रियायें हैं। इनका प्रयोग ब्रजभाषा में ठीक है। परन्तु खड़ी बोली में 'झपटैं' को 'झपटते हैं' शुद्ध रूप से लिखना पड़ेगा। इसी प्रकार खिलवारन, असीसन आदि शब्द ब्रजभाषा की दृष्टि से ठीक हैं परन्तु खड़ी बोली की दृष्टि से अशुद्ध हैं। परन्तु खड़ी बोली में शब्दों तथा क्रियाओं की शुद्धता पर बहुत ध्यान दिया जाता है। शब्दों का तोड़-मरोड़ खड़ीबोली में ठीक नहीं माना जाता। जैसे—

> गा के सदैव जिनके गुण भारती भी,
> पाती न पार उनका कुछ है कभी भी,
> जो है अचिन्त्य सुख-सिंधु जगद् विराम,
> सीता समेत उन राघव को प्रणाम।
>
> —मैथिलीशरण गुप्त

इस छंद में शब्द शुद्ध हैं, उनमें कोई भी तोड़-मरोड़ नहीं किया गया। मतलब यह है कि खड़ीबोली में काव्य-रचना के लिए एक सीमा नियुक्त कर दी गई है; परन्तु ब्रजभाषा में सीमा

निर्धारित होने पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। सुविधानुसार शब्दों का उलटफेर कर सकते हैं। व्याकरण का भी व्रजभाषा में कोई बंधन नहीं है। परन्तु खड़ीबोली में इसका भी ध्यान रखना पड़ता है।

परन्तु समय का प्रभाव जिस प्रकार किसी भी देश पर अवश्य पड़ता है, उसी प्रकार वहाँ की भाषा पर भी पड़ता है। इसलिए व्रजभाषा के काव्य-क्षेत्र का स्थान अब खड़ीबोली ने ले लिया है और ऐसी आशा है कि खड़ीबोली भविष्य में एक विराट रूप धारण करके अपना आधिपत्य स्थापित कर लेगी। वर्तमान समय में खड़ीबोली के तीन कवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा और बाबू मैथिलीशरण गुप्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पं० अयोध्यासिंहजी ने 'प्रियप्रवास' काव्य लिखा है। इसमें वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया है तथा कठिन शब्दों की अधिकता है। पं० नाथूराम शंकर शर्मा ने व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों की मिली हुई एक नई भाषा का उपयोग अपनी कविता में किया है। वह सुनने, पढ़ने में मधुर और सुन्दर है। 'शंकर-सरोज' 'अनुराग रत्न' आपके काव्य-ग्रन्थ हैं। बाबू मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के प्रसिद्ध खड़ीबोली के कवि हैं। आपने शब्दों की शुद्धता और व्याकरण के नियमों को अपनी रचनाओं में भलीभाँति निर्वाह करने का प्रयत्न किया है। हमारी समझ में इन सब में पंडित नाथूरामशंकर शर्मा ने काव्य-रचना में जिस

मार्ग का अवलंबन किया है वह विशेष आकर्षक, सुन्दर, मधुर, और अपनाने योग्य है।

आजकल के नये कवि प्रायः रचना करते समय भाषा का ध्यान नहीं रखते। इसलिए उनकी कविता एक ऐसी भाषा में लिखी जाती है जो न तो खड़ीबोली कही जा सकती है और न व्रजभाषा हो। इसलिए नवीन कवियों को भाषा पर अपना पूरा अधिकार रखना चाहिए। वे चाहे व्रजभाषा में लिखें या खड़ीबोली में; दोनों में से एक चुन लें, या दोनों में लिखें; परन्तु उन्हें भाषा-ज्ञान पहले अवश्य कर लेना चाहिए। जिस भाषा में कविता लिखनी हो उसमें लिखे गये उत्कृष्ट काव्यों का अध्ययन करना परमावश्यक है। जिससे भाषा का ज्ञान पूर्णरूप से हो जाय। काव्य-रचना में सबसे पहला काम कवि को भाषा की जानकारी ही है।

भाव

काव्य में भाव का होना बहुत आवश्यक माना गया है। प्राचीन हिन्दी के कवियों ने भावों को महत्व दिया है परन्तु उसके साथ ही साथ उन्होंने छंदों के वाह्य रूप को सुन्दर बनाने का भी प्रयत्न किया है। भाव कविता में उसी प्रकार होता है जिस प्रकार फूलों में सुगन्धि। सुगंधि से ही फूल की अच्छाई बुराई मालूम होती है। उसी तरह भाव पर ही कविता की उत्कृष्टता और निकृष्टता निर्भर है। तुलसी, केशव, सूर, विहारी

आदि ने अनेक सुन्दर भावों का समावेश अपनी काव्य-रचना में किया है। अन्य भाषाओं में—अँग्रेज़ी, बँगला में—वर्तमान समय में भावात्मक रचनाओं का एक तूफ़ान सा आ गया है। शैली, कीट्स, बायरन आदि कवियों ने भावात्मक कवितायें लिखने में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। बंगाली कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भावात्मक रचनायें लिखने में संसार-विख्यात हैं। हिन्दी के इस नवीन युग पर भी उक्त कवियों का प्रभाव पड़ा है। अनेक हिन्दी के नये कवि भी उसी भावात्मक रचनाओं में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। हिन्दी के वर्तमान कवियों में पं० नाथूराम शंकर शर्मा ने अनेक कवितायें ऐसी लिखी हैं जिनमें अनोखी सूझ हैं और उनकी रचनायें नवीन भावों से ओतप्रोत है। हरिऔधजी, सनेहीजी आदि ने भी भावपूर्ण रचनायें लिखी हैं। रहस्यवादी कवियों में श्री सुमित्रानंदनजी पंत, बाबू जयशङ्करप्रसादजी और निरालाजी आदि ने भावात्मक रचनायें लिखने में बड़ी सफलता प्राप्त की है।

नए कवियों को अपनी काव्य-रचना में भावों का प्रवेश करना चाहिए। विविध ग्रन्थों के अवलोकन तथा प्राकृतिक रूप से भावों का समावेश कविता में लाने का प्रयत्न वाञ्छनीय है। आजकल उत्कृष्ट साहित्यिक लेखकों और समालोचकों का यह विचार है कि भाव-प्रधान ही काव्य उत्कृष्ट काव्य

समझा जाता है । वाह्य रूप चाहे उतना सुन्दर भी न हो, तो विशेष हानिकर नहीं है ।

हिन्दी के पुराने आचार्यों ने भाव के चार भेद बतलाये हैं । जैसे—

युग विभाव अनुभाव कौ, संचारी हैं तीस ।
नायक नौ थायी सहित, ये सब अड़तालीस ॥

अर्थात्—विभाव के दो भेद—आलंबन और उद्दीपन । अनुभाव के चार भेद १—वास्तविक, २—मानसिक, ३—अहार्य ४—सात्विक । संचारी के तैंतास भेद—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, आलस्य, चिंता, दैन्य, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, आवेग, जड़ता, हर्ष, गर्व, विषाद, निद्रा, औत्सुक्य, अमर्ष, अपस्मार, सुप्ति, विवोध, उग्रता, ज्ञान, मरण, व्याधि, उन्माद, त्रास, अवहित्थ और वितर्क । स्थायो भाव के नौ भेद—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगप्सा या ग्लानि, आश्चर्य और निर्वेद । इस प्रकार चार भावों के अड़तालीस भेद होते हैं ।

विभाव शब्द का अर्थ उत्पन्न करनेवाला है । इसलिए विभाव ही भाव का कारण माना गया है । इसके दो भेद होते हैं । आलम्बन और उद्दीपन । जिसके आश्रय से रस की स्थिति होती है उसे आलम्बन कहते हैं । प्रत्येक रसों के आलम्बन विभाव पृथक् पृथक् हैं । उनमें से शृंगार रस

के आलंबन नायक-नायिका अर्थात् पुरुष और स्त्री आदि हैं। उद्दीपन उसे कहते हैं जिसकी सहायता से रस को उद्दीप्ति हो। जैसे—

चंद पुष्प षट विधि पवन, ऋतु वन बाग विहार।
राग रागिनी कहत कवि, उद्दीपन शृंगार॥

विभाव के अनन्तर होनेवाले भाव को अनुभाव कहते हैं। अनुभाव को साधारण भाषा में "कारण" और "कार्य्य" कहते हैं। कायिक अनुभाव—संचलन आदि शरीर की क्रिया और मनोविकार की उत्पत्ति के पश्चात् उसी के अनुसार मुख पर "प्रकट होने वाले" योग्य चिह्नों को व्यापक अनुभाव कहते हैं। मानसिक—अंतःकरण विचार से उत्पन्न हुए प्रमोद आदि के अनुभाव को मानसिक अनुभाव कहते हैं; आहार्य—आरोपित वेश को आहार्य्य अनुभाव कहते हैं। इसका प्रयोग नाटक में होता है। सात्विक—शरीर के अकृत्रिम अंग-विकार को कहते हैं। इसके नौ भेद माने गये हैं। संचारी भाव—जो भाव स्थायी भावों के साथ अनुचर की तरह चले उसे संचारी भाव कहते हैं। स्थायी भाव—जो भाव स्थिर रहनेवाला होता है उसे स्थायी भाव कहते हैं।

इसी प्रकार आचार्य्यों ने भाव का वर्णन काव्य-ग्रंथों में किया है। यही काव्य में प्रधानता रखता है। जो कवि भावों की प्रधानता रखता है उसकी रचना सर्वोत्तम समझी जाती है इसलिए भावों का समावेश काव्यों में अवश्य करना चाहिए।

रस

भाव से ही रस की उत्पत्ति होती है। रस का अंकुर उत्पन्न होते ही हृदय में भाव जागृत होते हैं। शरीर और प्राण का जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध भाव और रस का है। रस के नौ भेद हैं। १—श्रृंगार, २—हास्य, ३-करुण, ४—रौद्र, ५—वीर, ६—भयानक, ७—वीभत्स, ८—अद्‌भुत, और ९—शान्त।

श्रृंगार रस—नायक-नायिका के परस्पर आनंद को श्रृंगार कहते हैं। श्रृंगार रस के दो भेद होते हैं—संयोग और वियोग। देखने, स्पर्श करने तथा बातचीत करने से जो आनन्द उत्पन्न होता है उसे संयोग श्रृंगार कहते हैं। नायक-नायिका के परस्पर बिछोह को वियोग श्रृंगार कहते हैं। इस रस के देवता भी कृष्ण हैं। उनका वर्ण श्याम है।

हास्यरस—जिससे हँसी के भाव की पुष्टि हो उसे हास्य रस कहते हैं। इसके देवता प्रमथपति माने गये हैं। उनका वर्ण श्वेत है। हास्यरस के मुख्य तीन भेद माने गये हैं। १—स्मित, २—विहासित और ३ अति हसित।

करुण रस—जिस भाव से शोक प्रकट हो वहाँ करुण रस होता है। इसके देवता वरुण हैं। इनका वर्ण कबूतर की तरह है।

रौद्र—जिस भाव से क्रोध प्रकट हो उसे रौद्ररस कहते हैं। इसके देवता रुद्र हैं; वर्ण अरुण है।

वीर रस—जिस भाव से उत्साह उत्पन्न हो या वीरता प्रकट हो उसे वीर रस कहते हैं। इसका देवता इन्द्र है। उसका वर्ण मोतिया है। वीररस के तीन भेद माने गये हैं। १—युद्धवीर, २—दानवीर, और ३—दयावीर।

भयानक रस—जिस भाव से इन्द्रियों में विक्षोभ या भय उत्पन्न हो उसे भयानक कहते हैं। इसका देवता काल है। उसका रंग काला है।

वीभत्स रस—ग्लानि-जनित भाव जहाँ प्रकट हो वहाँ वीभत्स रस होता है। इसका देवता महाकाल है, उसका वर्ण नीला है। श्मशान आदि का वर्णन वीभत्स रस प्रकट करता है।

अद्‌भुत रस—जिस भाव से विस्मय प्रकट हो उसे अद्‌भुत रस कहते हैं। इसका देवता ब्रह्मा है, उसका वर्ण पीला है।

शांत रस—काम, क्रोध, आदि को दमन करने पर जो भाव उत्पन्न होता है वहाँ शांत रस होता है। इसके देवता नारायण हैं। उनका वर्ण शुक्ल है।

रसों के प्रयोग से काव्य में चमत्कार आ जाता है। जहाँ जिस रस के समावेश करने की आवश्यकता हो वहाँ उसी का समावेश करना चाहिए। कभी-कभी विरोधी रसों का भी समावेश हो जाता है परन्तु उससे काव्य-दूषित हो जाता है। रस के सहायक अलंकार होते हैं। शब्दों, अर्थों में उत्कृष्टता प्रदान करके रसों की वृद्धि में वे सहायक होते हैं। पिंगल के जानकारों का कहना है कि प्रत्येक रस को लाने के लिए छंदों की

उपयुक्त रचना भी आवश्यक है। कौन से छंद में किन रसों का निर्वाह हो सकता है इसका भी उल्लेख किया गया है। मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलंबित, शिखरिणी, और मालिनी वर्णिक छंदों में श्रृंगार रस का यदि समावेश किया जाय तो अच्छी सफलता मिल सकती है। शांत और करुण रस भी इसी छंद में सफलतापूर्वक लाये जा सकते हैं। भुजंगप्रयात, वंशस्थ और शार्दूलविक्रीडित में वीर, रौद्र और भयानक रसों का अच्छा निर्वाह किया जा सकता है। हिन्दी के छंदों में सवैया, बरवै, और दोहा में श्रृंगार, करुण और शान्त रस लाया जा सकता है। छप्पय, घनाक्षरी और रोला में, वीर, भयानक और रौद्र रस का अच्छा निर्वाह किया जाता है। यों तो जितने छंद हिन्दी में हैं उनमें भी सभी रसों का निर्वाह होता है। वस्तुतः किसी भी छंद में कोई भी रस लाया जा सकता है। परन्तु यह कवि की उत्कृष्टता और योग्यता पर निर्भर है। हरिगीतिका छंद में भी वीर रस का निर्वाह किया जा सकता है। बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने 'जयद्रथ वध', और 'भारतभारती' दोनों पुस्तकें इसी छंद में लिखी हैं। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'प्रियप्रवास' में संस्कृत वृत्तों का प्रयोग किया है; इसलिए उसमें श्रृंगार, करुण और शांतरस का अच्छा समावेश है। पंडित नाथूरामशंकर शर्मा ने कवित्त और घनाक्षरी में हास्य, वीर, रौद्र रसों के लिखने में बड़ी सफलता पाई है। कवियों को काव्य में विरोधी रसों के समावेश से दूर रहना चाहिए। इससे काव्य दूषित

हो जाता है । यदि श्रृंगार रस का वर्णन हो रहा हो तो वहाँ वीर या रौद्र रस का लाना नियम-विरुद्ध है । विरोधी रसों का प्रयोग किसी भी रस की कविता में निर्वाह करना बहुत ही कठिन है । इससे कविता भद्दी और नीरस हो जाती है। श्रृंगार के मित्र हास्य और अद्भुत हैं, परन्तु करुण, वीभत्स और रौद्र विरोधी हैं। हास्य के मित्र श्रृंगार, अद्भुत हैं; भयानक और करुण विरोधी हैं। इसी प्रकार अद्भुत का भयानक, शांत का करुण; रौद्र का भयानक, वीर का रौद्र, करुण का शांत, भयानक का अद्भुत, रौद्र, वीर मित्र तथा इसी प्रकार अद्भुत का रौद्र, शांत का वीर, श्रृंगार, रौद्र, हास्य, भयानक, रौद्र का हास्य; श्रृंगार, अद्भुत, वीर का शांत, श्रृंगार; करुण का हास्य, श्रृंगार; भयानक का श्रृंगार, हास्य, शांत, और वीभत्स रस का श्रृंगार रस शत्रु है।

काव्य में रस एक अनुपम वस्तु मानी जाती है। रस से काव्य-प्रेमियों का अधिक सम्बन्ध है। इसलिए उसके सुन्दर प्रयोग से पाठकों पर प्रभाव भी पड़ता है। इसलिए रसों का निर्वाह भली भाँति करना चाहिए। प्रत्येक कवि किसी न किसी प्रकार का रस अपने काव्य में प्रयोग कर सकता है।

गुण

काव्य-रचना का गुण-युक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। क्या शब्द, क्या अर्थ गुण-युक्त होने चाहिएँ। जहाँ तक हो अनुस्वार

युक्त वर्णों का प्रयोग काव्य में कम करना चाहिए। दग्धाक्षरों का प्रयोग न करना चाहिए। समास और संयुक्ताक्षरों का भी प्रयोग अधिक न होना चाहिए। जो कविता; सुनते ही हृदय में आनन्द पैदा करे, वही प्रसाद और गुण से युक्त मानी जायगी। कविता का गुण माधुर्य है। मधुर और ओजपूर्ण शब्दों का प्रयोग कविता के अन्दर लाना आवश्यक है। वीर, रौद्र, और भयानक रसों में ओजपूर्ण शब्दों को लाना चाहिए। कविवर ठाकुर ने सुन्दर गुण-युक्त कविता के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

"मोतिन को सी मनोहर माल, गुहै तुक अक्षर रीझि रिझावै।
धर्म को पंथ कथा हरिनाम की, युक्ति अनूठी बनाय सुनावै॥
'ठाकुर' सो कवि भावत मोहिं जो, राजसभा में बड़प्पन पावे।
पंडित और प्रवीनन के पुनि, चित्त हरै सो कवित्त कहावै॥"

शब्दों का प्रयोग, तुक की श्रेष्ठता, अनूठी युक्ति, जिस छंद में पाई जाय वही माधुर्य्य, और प्रसाद-गुण से पूर्ण छंद माना जायगा। प्राचीन काल के हिन्दी कवि चंद, भूषण, ओज-पूर्ण कविता लिखने में प्रसिद्ध हैं। विहारी ने अपने छंदों में गागर में सागर भरने में अच्छी सफलता पाई है। उनके दोहों के शब्दों के प्रयोग में भी एक चमत्कार, और मधुरता पाई जाती है। व्रजभाषा के कवि सत्यनारायण कविरत्न के छन्दों में अच्छी मधुरता है। अनुप्रास, यमक अलंकारों से भी छंदों में

मधुरता आ जाती है । शैली सुन्दर, भाषा प्रौढ़ और सजीव होना आवश्यक है। यही सब काव्य के गुण हैं । दोष रहित काव्य-रचना प्रसाद-गुण पूर्ण होगी। उदाहरण—

कूजत कहुँ कल हंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारण्डव उड़त कहूँ जल-कुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि धावत॥

—हरिश्चन्द्र

+ + +

मान-दान माघ को महत्व दान मम्मट को,
दान कालिदास को सुयश का दिला चुकी।
रामामृत तुलसी को काव्य-सुधा केशव को,
राधिकेश भक्ति-रस सूर को पिला चुकी॥
मुख्य मान-पान देश भाषा-परिशोधन का,
भारत के इंदु हरिचंद को दिला चुकी।
सुकवि सभा में महावीरता सरस्वती की,
शंकर से दीन मति हीन को मिला चुकी॥

—नाथूरामशंकर शर्मा

संस्कृत कवियों की रचनाओं में प्रसाद और माधुर्य्य गुण विशेष रूप से पाया जाता है । महाकवि जयदेव का 'गोविन्दगीत' मधुरता का ख़ज़ाना है। प्रत्येक छन्द से मधुरता और सुन्दरता टपकी पड़ती है।

उन्मदमदनमनोरथ पथिक वधूजनजनितविलापे।
अलि-कुल-संकुल-कुसुम-समूह निरकुल-बकुल-कलापे॥

—जयदेव

शब्द-योजना और प्रवाह का होना भी काव्य-गुणों का द्योतक है। तुलसीदास की रामायण में इसके अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। सूरदास की शब्दयोजना बड़ी सुन्दर है। पद्माकर को कविता में शब्द-योजना और प्रवाह सुन्दर होता है। जैसे—

पापिन की पाँति भाँति भाँति बिललाति परी,
जम की जमाति हल कंपति हिलति है।
कहै पद्माकर हमेस दिवि-वोथिन—
विमानन की रेलारेल ठेलन ठिलति है॥
सुरधुनि रावरे उधारे जगजीवन की,
छिन छिन सेनी इन्द्र लोकहिं मिलति है।
आसन अरघ देति देति निसिबासर,
बिचारे पाकसासन को साँस न मिलति है॥

—पद्माकर

दोष

काव्य में हमेशा दोषों से बचना चाहिए। शब्द-दोष, अर्थ-दोष, भाव-दोष, रस-दोष, छंद-दोष अनेकानेक दोष काव्य-रचना में होते हैं, परन्तु इनसे बचना ही अच्छे कवि के लक्षण

हैं। काव्य में दोष लगभग ७० के होते हैं। उनमें शब्द-दोषों की संख्या ग्यारह है। कर्णकटु, ग्रामीण, असमर्थ, अश्लील, समास, भाषाहीन, निहतार्थ, निरर्थक, नेमार्थ, क्लिष्ट, और विरुद्ध।

१—कर्णकटु—जिन शब्दों के प्रयोग से कविता कानों को अच्छी न लगे वह कर्णकटु कविता है। ट, ठ, ड, ढ, ण, ञ आदि शब्दों का प्रयोग कविता में करने से कर्णकटु हो जाती है।

२—ग्रामीण—जिस काव्य में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हो, वहाँ ग्राम्य-दोष माना जाता है।

३—असमर्थ—जिस काव्य में युक्तियुक्त शब्दों का प्रयोग न किया जाय वहाँ असमर्थ दोष माना जायगा।

४—अश्लील—जिस कविता में ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जो सुनने में घृणित और अस्वाभाविक हों वहाँ अश्लील-दोष माना जाता है।

५—समास—जिस काव्य में समास का निर्वाह भली-भाँति न किया गया हो वहाँ समास-दोष माना जाता है।

६—भाषाहीन—जो कविता बिना किसी नियम के बनाई जाती है, मात्राओं और वर्णों का उसमें कोई नियम नहीं रहता उसे भाषा-हीन कविता कहते हैं।

इसी प्रकार जिस कविता में दो अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग किया जावे परन्तु उसमें से जो प्रसिद्ध अर्थ हो उसका लोप

हो जावे वहाँ निहतार्थ, जिस कविता में छंद-पूर्ति के लिए निरर्थक शब्द ठूँस दिये जावें वहाँ निरर्थक, जिस कविता में मुख्य अर्थ किसी न किसी प्रकार समझ लिया जाय वहाँ नेयार्थ, जहाँ गूढ़ शब्द में अधिक अर्थ बेढंगे रूप में निकाला जावे वहाँ क्लिष्ट और जहाँ किसी उत्तम कवि के रचे हुए शब्दों की रचना बेढंगे रूप से अपनाई जावे वहाँ विरुद्ध दोष माना जाता है।

वाक्य दोष—जिस कविता में पद या वाक्य दूषित होते हैं वहाँ वाक्य-दोष होता है। इसके सात भेद होते हैं। जहाँ पर अक्षर रस के प्रतिकूल हों वहाँ प्रतिकूलाक्षर, जहाँ एकही चरण का अक्षर दूसरे चरण में मिलाया जावे वहाँ हतवृत, जहाँ कवि अपनी इच्छा के अनुसार प्रचलित शब्द की संधि बिगाड़ कर लिखे वहाँ विसंधि, जहाँ मूल ही में कोई आवश्यक शब्द कहने को रह जावे वहाँ मूल पद, जहाँ किसी शब्द के साथ व्यर्थ शब्द ठूँसा जावे वहाँ अधिक पद, जहाँ कोई शब्द बराबर प्रयोग किया जाय वहाँ पुनरुक्ति और जहाँ क्रम का भंग होता हो वहाँ क्रम-दोष माना जाता है।

अर्थ-दोष—जिस काव्य में पद-परिवर्त्तन करने से भी दोष दूर न हो सके वहाँ अर्थ दोष माना जाता है। इसके भी अनेक भेद हैं। जैसे—जिस काव्य में विशेष्य के अनेक विशेषण होने पर भी अर्थ पुष्ट न हो वहाँ अपुष्टार्थ, जहाँ किसी शब्द के रखने की इच्छा बनी रहे वहाँ साकांक्ष, जहाँ अनुवाद करने की विधि ठीक न हो वहाँ अयुक्त, जहाँ कई बातें एक साथ

कही गई हों परन्तु उसकी संगति बुद्धिमानी के साथ न मिलाई गई हो वहाँ सहचरभिन्न, जहाँ किसी बात का त्याग और फिर उसी की स्वीकृति दिखलाई गई हो वहाँ त्यक्तपुनः स्वीकृति, जहाँ विषयों का उल्लंघन किया जाय वहाँ अन्ध, जहाँ छंदों के पदों में नियम के विरुद्ध मात्रायें कम या अधिक हों वहाँ पंगु, जहाँ ठीक-ठीक अर्थ न जान पड़े वहाँ मृतक, जहाँ शब्द का अर्थ अस्पष्ट और खींचतान कर लगाया जाय वहाँ बधिर और जहाँ किसी भी भाषा के साथ विरोधी भाषा के शब्दों का प्रयोग पाया जाता हो वहाँ वायस पाँति या मराल-दोष माना जाता है।

रस-दोष—जिस छंद में रस की शब्द-वाच्यता संचारी, और स्थायी भाव से होती है वहाँ रस-दोष माना जाता है। रस-दोष दस होते हैं। उनमें कुछ इस प्रकार हैं—

जिस छंद में विभाव और अनुभाव की कल्पना कठिनाई से हो, जहाँ भाव और रस की प्रतिकूलता पाई जाय, जहाँ वीर, शृंगार, वीभत्स, भय, रौद्र इन रसों में से एक ही छंद में दो या अधिक रसों का संयोग हो, जहाँ दो या अधिक विरोधी रस एक साथ आवें वहाँ रस-दोष माना जाता है।

यहाँ हम संक्षिप्त में कुछ दोषों का वर्णन करते हैं। कवियों को काव्य-रचना करते समय इन दोषों से बचना चाहिए; जिससे रचना प्रसाद-गुण से युक्त हो।

१—किसी कविता में स्वभाव के विरुद्ध या अप्राकृतिक वर्णन न होना चाहिए।

२—मात्रिक छंदों में मात्राओं और वर्णिक छंदों में वर्णों का नियमपूर्वक पालन होना चाहिए। नियम-विरुद्ध छंद दोषयुक्त माना जायगा।

३—प्रत्येक कविता में कुछ नवीन बात होनी चाहिए, तभी वह कविता कहला सकेगी। केवल शब्दों का जोड़ना कविता नहीं कहला सकता; वह केवल पद्य कहलाएगा। कविता का सर्वश्रेष्ठ गुण उसका चमत्कार और भाव है।

४—कविता में जो शब्द व्यवहृत हों उनमें उपसर्गों की भरमार न होनी चाहिए, जैसे 'संस्मित' शब्द का अर्थ मुस्कराना है। उसके आगे 'सु' लगा कर 'सुसंस्मित' बनाना व्यर्थ है क्योंकि दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है। इसी प्रकार 'कु' आदि शब्द भी हैं।

५—टवर्ग का प्रयोग जहाँ तक हो कविता में न किया जाना चाहिए।

६—किसी भी शब्द का बार-बार प्रयोग करना उचित नहीं है।

७—अलंकारों का प्रयोग जैसे उपमा, रूपक, आदि उचित रूप से करना चाहिए।

८—अर्थ के विरुद्ध शब्दों का प्रयोग और यतिभंग दोष से बचना चाहिए।

६—अश्लीलता से बचना चाहिए।

शब्द-योजना

काव्य-रचना करने के लिए शब्द-योजना की विशेष आवश्यकता है। प्रत्येक कवि को शब्दों का ख़ूब ज्ञान होना चाहिए। क्योंकि उसे प्रत्येक समय इस बात के लिए तय्यार रहना चाहिए कि यदि एक शब्द किसी स्थान के लिए उपयुक्त न होता हो तो उसी की समता के दूसरे शब्द का वहाँ प्रयोग किया जाय। इसी प्रकार चाहे जितने शब्द हों उनका यथास्थान प्रयोग होना चाहिए। शब्द-योजना के लिहाज़ से हम हिन्दी कवियों को तीन भाग में विभाजित कर सकते हैं। पहला पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का दल है। यह संस्कृत शब्दों का प्रयोग करना अधिक उचित समझता है। दूसरा दल बाबू मैथिलीशरण गुप्त का है। गुप्तजी का दल संस्कृत कवियों की भांति एक दायरे में रहकर चलना चाहता है। वह अपनी रचना में ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहता है जो शुद्ध हों। तोड़े-मरोड़े शब्दों के प्रयोग का वह पक्षपाती नहीं है। तीसरा दल पं० नाथूराम शंकर शर्मा का है। इस दल में स्वर्गीय राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' भी शामिल थे। यह दल कविता में उपयुक्त शब्दों के प्रयोग का पक्षपाती है। उर्दू-हिन्दी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग यह काव्य में ऐसी ख़ूबी से करता है कि प्रवाह, माधुर्य्य तथा प्रसाद में कोई कमी नहीं होने पाती। आगरे के ताजमहल का

वर्णन, चांदनी रात में शंकरजी ने किस उत्तमता से किया है—देखिये।

देखिये इमारतें मज़ार दुनिया की सारी,
रोज़े ने कहो तो शान किसकी न रद की।
हीरा पुखराज मोतियों की दर दूर मारी,
शंकर के शैल की भी सूरत जरद की॥
शौकत दिखाता यमुना के तीर शाहजहाँ,
आगरे ने आबरू इरम की गिरद की।
धन्य मुमताज बेगमों की सरताज,
तेरे नूर की नुमायश है चाँदनी शरद की॥

यह हिन्दी का घनाक्षरी छंद है। इसमें उर्दू शब्दों का प्रयोग किस ख़ूबी और उत्तमता से किया गया है कि माधुर्य्य प्रसाद गुण में जरा भी कमी नहीं आई। हमारी राय में हिन्दी में शङ्करजी ही एक ऐसे कवि हैं जिनका शब्द-भंडार सब से बड़ा है। ये अपनी रचनाओं में ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो इनकी मस्तिष्क की सूझ की प्रशंसा करते हैं।

वर्तमान नवीन कवियों में पं० सुमित्रानंदन पन्त के मस्तिष्क में भी शब्द-भंडार की अधिकता है। आपने भी अनेक सुन्दर और सरस शब्दों का प्रयोग किया है जो नवीन हैं। मैंने देखा है कि पंतजी स्वयं नवीन शब्दों की खोज में रहते हैं। हिन्दी के नवयुग के आप सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनकी शब्द-योजना बड़ी

सुन्दर, सरस और मधुर होती है । बा० जयशंकरप्रसाद और निरालाजी भी शब्दों का प्रयोग अच्छा करते हैं ।

इसलिए हिन्दी के कवियों को काव्य-रचना करनेवालों को शब्दों पर ख़ूब आधिपत्य 'कमांड' होना चाहिए । यदि शब्दों पर उनका प्रभाव या अधिकार न रहा तो कविता नीरस और भद्दी होगी। वह कोरी तुकबंदी कही जायगी। क्योंकि पढ़नेवाले का ध्यान पहले शब्दों की ही ओर जाता है भावों की ओर पीछे।

संख्या-सूचक सांकेतिक शब्द

कविता के आचार्य्यों ने काव्य में व्यवहृत होनेवाले संख्या-सूचक शब्दों के लिए कुछ सांकेतिक शब्दों के प्रयोग का भी नियम बनाया है। जैसे कहना हुआ चार तो यदि 'वेद' शब्द का प्रयोग किया जायगा तो भी चार शब्द का ही बोध होगा। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

० के लिए नभ, आकाश, गगन, १ के लिए पृथ्वी, चंद्रमा, २ के लिए बाहु, नयन, कर्ण, पद, ३ के लिए राम, काल, अग्नि ४—वेद, वर्ण, आश्रम, ५— पांडव, शर; ६—ऋतु, रस, राग, शास्त्र, ७—समुद्र, स्वर, ताल, लोक, ८—सिद्धि, दिग्गज, याम; ९—ग्रह, भक्ति, अंक, १०—दिशा ११--शङ्कर, १२—सूर्य्य, राशि १३—नदी

१४—लोक, विद्या, १५—तिथि १६—कला, शृंगार, १८—पुराण, २०—नख।

इसके सिवा आगे के जितने शब्द होते हैं प्रायः, उन्हें कवि डबल सांकेतिक नाम लिखकर बतलाते हैं। जैसे ६१ को शशि+ग्रह लिख कर संकेत करेंगे। इसी प्रकार अन्य शब्दों का भी हो सकता है। जैसे ऊपर लिखा गया है ६१। इसलिए ग्रह+शशि लिखना चाहिए था परन्तु लिखा जायगा शशि+ग्रह ही। ऐसा लिखने में कवियों ने कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं किया है परन्तु ऐसा मान लिया गया है और कवियों की परम्परा भी ऐसा ही करती आई है।

वर्णन

प्रायः नये कवि जब किसी ख़ास वस्तु का वर्णन करने लगते हैं तब उन्हें उनके किन अंगों का वर्णन करना चाहिए इसका वे ध्यान नहीं रखते। ऐसा करने से काव्य में शिथिलता आ जाती है और उससे कवि की कमज़ोरी प्रमाणित होती है। इसलिए प्रत्येक नये कवि को चाहिए कि जब वह किसी वस्तु का वर्णन करने लगे तो उसके अंगों तथा उपअंगों को ध्यान में रख कर वर्णन करते समय उसे प्रयोग में लावे। जैसे किसी को वर्षाऋतु का वर्णन करना है तो उसे चाहिए कि वर्णन करते समय बादल, मेंढक, बिजली, पपीहा, इन्द्रधनुष, हरियाली, बगला, मोर, अगाध जल, नदी, आदि

का वर्णन भी करना चाहिए । तभी वर्षाऋतु का पूरा वर्णन हो सकेगा । कहने का मतलब यह है कि जिस वस्तु का वर्णन किया जाय वह पूर्ण हो । जिससे पाठकों को उसके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान हो जाय और कवि की स्मरण शक्ति तथा कवि-कौशल की भी रक्षा हो जाय । इसी प्रकार वसंत का वर्णन करते समय, कोयल का कूकना, भौंरों का फूलों पर गूँजना, सुगंधित वायु का बहना, नीला स्वच्छ आकाश का रहना, चन्द्रमा का प्रकाश, फूलों का खिलना, पलास का फूलना आदि का भी वर्णन होना चाहिए । इससे वसंत ऋतु का वर्णन संपूर्ण रूप से हो जायगा । देश, नगर, आश्रम, चंद्रोदय, सरिता, प्रातःकाल, जंगल आदि शब्दों के सम्बन्ध में वर्णन करते समय इनके अन्य अंगों तथा उपअंगों का वर्णन भी कर देना आवश्यक है ।

उपमा

प्रायः नये कवि कविता लिखते समय उपमा देने का प्रयत्न शीघ्र ही करने लगते हैं। परन्तु वे कभी कभी इस बात का निर्णय ठीक ठीक नहीं कर पाते कि उपमा किससे देनी चाहिए। यदि कवि प्रतिभाशाली है तब तो उपमा देने के लिए अनेक उपमेय मिलेंगे परन्तु यदि नवीन है तो उसे ख़ूब सोच-समझ कर उपमा देनी होगी । हिन्दी के प्रायः जितने कवि हुए हैं उन लोगों ने उपमा अलंकार का प्रयोग अपने काव्य में ख़ूब किया है । इसलिए अनेक शब्दों की उपमायें ऐसी हैं जो एक प्रकार से

निश्चित हो गई हैं। जैसे 'श्याम' की उपमा देनी है तो रात, कलंक, मसि, काजल, नीलकंठ, यमुना, पाप, दानव, हाथी, दुष्ट का मन, भौंरा, राम, कृष्ण, बाल आदि से देना चाहिए। इसी प्रकार चपल की बंदर, पीपल का पत्ता, कटाक्ष, लोभी मन, वायु, कुलटा, बालक, आदि से देनी चाहिए। नये कवियों को चाहिए कि वे प्राचीन तथा अर्वाचीन काव्य-रचनाओं को पढ़ते समय इस बात का ध्यान रखें कि उन कवियों ने किस वस्तु की उपमा किससे दी है। वे उसे एक स्थान पर संग्रह करते जायँ और अपनी रचना में प्रयोग करते समय ध्यान रखें। क्योंकि उपमा ही एक ऐसा अलंकार है जिसका कवि लोग ख़ूब प्रयोग करते हैं। इसके ग़लत प्रयोग से काव्य का प्राकृतिक सौंदर्य्य जाता रहेगा।

नखशिख

प्राचीन कवियों ने, स्त्री पुरुष के नखशिख तथा समस्त अंगों की उपमा के लिए अनेक शब्द निर्धारित किये हैं—संकेत रूप से भी कुछ शब्दों का प्रयोग कवियों ने ऐसा किया है जिनसे किसी न किसी अंग का बोध होता है। जैसे 'केश' के लिए सांप, घटा; नासिका के लिए तोता, तिल का फूल, किंशुक; कर के लिए कमल, जंघा के लिए केला, हाथी का सूंड़, कटि के लिए सिंह की कमर; स्वर के लिए वीणा, कोकिल, अधर के लिए बिम्बा फल, मूंगा, लाल फूल, भृकुटी—

लता, धनुष, दाँत के लिए—कुन्द-कली, अनार के दाने, मोती आदि से उपमायें देनी चाहिएँ। इसी प्रकार अन्य शब्द भी हैं। प्राचीन काव्य के पढ़ने से नखशिख के सम्बन्ध में जो कुछ उपमायें मिलें उन पर नवीन कवियों को ध्यान देना चाहिए। क्योंकि वे उपमायें एक प्रकार से प्रायः निर्धारित हो गई हैं।

नये कवियों से

कई वर्षों से यह देखा जाता है कि लोग ज्यों ज्यों शिक्षित होते जा रहे हैं त्यों त्यों उनमें काव्य-रचना का प्रेम बढ़ता जा रहा है। अक्सर नये कवि यह पूछते हैं कि क्या किया जाय कि कविता अच्छी बनने लगे। संसार में कवि दो प्रकार के होते हैं एक तो प्राकृतिक अर्थात् जिनमें कविता लिखने की प्रतिभा प्राकृतिक रूप से होती है उन्हें विशेष रूप से अध्ययन भी नहीं करना पड़ता है और उनकी सरस्वती जाग्रत हो जाती है। वे जो कुछ लिखते हैं वह शुद्ध और काव्य लक्षणों से युक्त होता है। दूसरे ऐसे कवि हैं जो परिश्रम और अध्ययन करने से बनते हैं। प्रथम श्रेणी के कवि संसार में विरले ही पाये जाते हैं। परन्तु द्वितीय श्रेणी की संख्या अधिक है। यहाँ नये कवियों के लिए कुछ हिदायतें लिखी जाती हैं। यदि वे इन बातों पर ध्यान रक्खेंगे तो उन्हें काव्य-रचना में सफलता प्राप्त होने में सहायता मिलेगी।

१—जो लोग कवि बनना चाहते हों उनमें काव्य-पठन-पाठन की ओर विशेष रुचि, और लगन होनी चाहिए। किसी भी काव्य को सुनकर वे उसका आनंद ले सकें।

२—नए कवियों को, कम से कम पहले कविता के साधारण नियमों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, तब काव्य रचना के लिए हाथ बढ़ाना चाहिए।

३—कवि को संगीत से प्रेम अवश्य होना चाहिए।

४—हृदय का सुन्दर, स्पष्टवादी, पठन-पाठन का प्रेमी होना कवि के लिए आवश्यक है।

५—कौन सा काव्य अच्छा है और कौन सा बुरा इसके पहचानने की शक्ति कवि में होना आवश्यक है।

६—प्राचीन और अर्वाचीन कवियों की सूक्तियों का अध्ययन और उनके स्मरण रखने की शक्ति भी कवि के लिए आवश्यक है।

७—प्रकृति का प्रेमी, कल्पना का पुजारी होना भी नए कवि को उचित है।

८—प्रसन्न-चित्त रहना, चित्र-कला से प्रेम करना, इतिहास का पढ़ना, अच्छे वेश में रहना, नाटक-सिनेमा देखने की इच्छा रखना भी कवि-रुचि उत्पन्न होने के लक्षण हैं।

९—एकान्त-सेवन भी कवि के लिए आवश्यक है।

१०—स्वाधीन रहना, अपनी बड़ाई सुनकर संकोच

करना तथा सन्तोष और सदाचार से रहना भी सुकवि के लक्षण हैं।

११—कविता लिखते समय इस बात का विचार करना कि इसमें कोई सुन्दर या नया भाव आया है अथवा नहीं। कविता चमत्कार से हीन है या नहीं, इस बात का विचार करना भी कवि का कर्तव्य है।

१२—एकान्त स्थान में जहाँ शोर-गुल न हो, प्रातःकाल बैठकर कविता लिखना कवि के लिए आवश्यक है। जिस सम्बन्ध में कवि कविता लिखना चाहे, उसके सम्बन्ध की विविध कल्पना बार बार उसके हृदय में उठनी चाहिए।

१३—लिखते समय काव्य के दोषों और गुणों का ध्यान कवि को बना रहना चाहिए।

१४—कवि के पास शब्दों का भण्डार होना चहिए। वह यह निर्णय कर सके कि अमुक शब्द कविता में प्रयोग करने योग्य है अथवा नहीं।। उसके प्रयोग से काव्य का चमत्कार बढ़ेगा या घटेगा।

१५—कवि के लिए तुकों का ज्ञान भी ख़ूब अच्छा होना चाहिए। सुन्दर सुन्दर तुक ढूँढ़ने में उसकी शक्ति आसानी से कामयाब हो जानी चाहिए।

१६—कवि को किसी भी छंद के प्रवाह या गति का ऐसा सुन्दर ज्ञान होना चाहिए कि बिना मात्रा या वर्ण गिने ही वह उसे शुद्ध-अशुद्ध बतला सके।

१७—स्वभाव तथा लोकाचार के विरुद्ध कुछ भी कहना कवि के लिए वर्जित है।

१८—कवि के लिए विनम्र होना बहुत आवश्यक है। उग्रता या क्रोध से उसे काम न लेना चाहिए।

१९—काव्य के बाह्य स्वरूप का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर उसका आन्तरिक ज्ञान भी प्राप्त किया जाना चाहिए, नहीं तो जो कविता बनेगी वह केवल तुकबंदी होगी।

२०—कवि को समालोचना से कभी घबराना न चाहिए।

२१—नाम की चिंता न करना और शांति-पूर्वक स्वांतः-सुखाय के सिद्धान्तानुसार काव्य-रचना करना श्रेष्ठ कवि के लक्षण हैं।

अब हम यहाँ प्रसिद्ध मात्रिक और वर्णिक छंदों के लक्षण और प्रत्येक के उदाहरण आगे लिखते हैं। जिनसे छंदों का ज्ञान पाठकों को हो जायगा।

—

मात्रिक-छंद

१—बगहंस

लक्षण—इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक में ६ मात्राओं पर यति होती है। अन्त में लघु-गुरु होता है।

उदाहरण—

कृष्ण पास,
तबहिं दास।
दिय पठाय,
रन सुनाय॥

—सूदन

२—सुगति

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ४ और ३ मात्राओं के विराम से ७ मात्रायें होती हैं। अन्त में एक गुरु होता है।

उदाहरण—

आलस, तजो,
हरहर, भजो।
छल से, लजो,
गुन से, सजो॥

—विनायकराव

३—छवि

लक्षण—इस छन्द के प्रत्येक चरण में ४-४ मात्राओं के विराम से ८ मात्रायें होती हैं। अन्त में एक जगण भी होता है।

उदाहरण—

प्रभु हौ, प्रवीन।
नर हैं, जु दीन॥
तिनकी, सँभार।
तुम्हरे, अधार॥

—विनायकराव

४—हारी

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ९ मात्रायें होती हैं। अन्त में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

तो मानु भारी,
ठाने पियारी।
सो तैं सुखारी,
होती महारी॥

—विनायकराव

५ दीपक

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १० मात्रायें होती हैं। अन्त में गुरु-लघु होता है।

उदाहरण—

वह राउ बुधवान,
करि सूर सनमान।
जहँ जहँ रहे ज्वान,
तहँ थापि बलवान॥
—विनायकराव

६—आभीर

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ११ मात्रायें होती हैं। अन्त में एक जगण होता है।

उदाहरण—

यों लिखि सिंह सुजान,
ब्रजपति चित सुखदान।
जाके उर नहि आन,
श्री हरदेव समान॥
—सूदन

७—तोमर

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १२ मात्रायें होती हैं। अन्त में गुरु और लघु होता है।

उदाहरण—

तब चले बाण कराल,
फुंकरत जनु बहु व्याल।

कोप्यो समर श्रीराम,
चल विशिख निशिथ निकाम ॥

—तुलसीदास

८—कलिका

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १४ मात्रायें होती हैं। अंत में एक गुरु होता है।

उदाहरण—

पति साथ तिया तपस्विनी,
आर्या साध्वी मनस्विनी।
बुध कृत सुधा सची ह्व सती,
पुनि पतिव्रता एकपती ॥

—विनायकराव

९—उल्लाला (१)

लक्षण—इस छन्द के प्रत्येक चरण में ८ और ५ मात्राओं के विराम से १३ मात्रायें होती हैं। अन्त में लघु होता है।

उदाहरण—

सेवहु हरि-सरसिज चरण,
गुण-गण गावहु प्रेमकर।
पावहु मन में भक्ति को,
और न इच्छा रसिकवर ॥

—भानु

१०—प्रतिभा

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १४ मात्रायें होती हैं। प्रारम्भ में लघु और अन्त में गुरु होता है।

उदाहरण—

चरित है मूल्य जीवन का।
वचन प्रतिबिम्ब है मन का॥
सुयश है आयु सज्जन की।
सुजनता है प्रभा धन की॥

—रामनरेश त्रिपाठी

११—चौपई

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १५ मात्रायें होती हैं। अन्त में गुरु और लघु होता है।

उदाहरण—

हम चौधरी, डोम सरदार,
अमल हमारा दोनों पार।
सब मसान पर, हमरा राज,
कफ़न माँगने, का है काज॥

—हरिश्चन्द्र

इस का नाम 'जयकरी' भी है।

१२—चौपाई

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती है। अन्त में गुरु होता है।

उदाहरण—

वर्षा काल मेघ नभ छाये।
गरजत लागत परम सुहाये॥
दामिनि दमकि रही घन माहीं।
खल की प्रीति यथाथिर नाहीं॥

—तुलसीदास

इसी छंद का नाम 'रूप चौपाई' और 'पादकुलक' भी है। इस छंद की रचना करने में यह ध्यान रखना चाहिए कि इसकी गति न बिगड़ने पावे।

१३—पद्धरी

लक्षण—इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती है। अन्त में जगण होता है।

उदाहरण—

तुम अमल अनंत अनादि देव।
नहिं वेद बखानत सकल भेव॥
सबकर समान नहिं वैर नेह।
निज भक्तन कारन धरत देह॥

—तुलसीदास

इस छंद को, पद्धरिका, प्रज्वलय और प्रज्जवलिया के नाम से भी पुकारते हैं। कुछ विद्वानों की सम्मति है इसके प्रत्येक चरण में चार-चार मात्राओं पर यति होनी चाहिए।

१४–डिल्ला

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं। अंत में दो लघु होते हैं।

उदाहरण—

पूछहु राम कथा अति पावनि।
शुक सनकादि शंभु मनभावनि॥
शकुनाधम सब भाँति अपावन।
प्रभु मोहि कीन्ह विदित जगपावन॥

—तुलसीदास

किसी किसी कवि ने इस छंद का नाम 'अरिल्ल' भी बतलाया है।

१५–प्लवंगम

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ११ और १० मात्राओं के विराम से २१ मात्रायें होती हैं। अंत में एक गुरु होता है।

उदाहरण—

फिरि बदनेस कुँवार, बियो सुफतेह अली।
बैठे इकले जाय करन, करनि मसलति भली॥
घरी दोय बतराय, दुहूं के मन रले।
कौल बचन करि एक, दोऊ डेरा चले॥

—सूदन

इस छंद को कोई कोई कवि 'प्लवंगा' और 'चंद्रायण' भी कहते हैं।

१६–लावनी

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में २२ मात्रायें होती हैं। १३ और ९ मात्राओं पर विराम होता है। अंत में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

सबने सब दोष विसार दिव्य गुण धारे।
तज बैर निरंतर प्रेम-प्रसंग प्रचारे।
चेतन जीवित ऋषि देव पितर सत्कारे।
कर दिये दूर खल खर्व कुमति के मारे॥

—नाथूराम शङ्कर शर्मा

इस छंद का नाम 'राधिका' भी है। 'छंदप्रभाकर' ग्रंथ के रचयिता का भी मत यही है। कोई कोई गाने वाले इसे 'मरहठी ख्याल' के नाम से भी पुकारते हैं।

१७–कुंडल

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में २२ मात्रायें होती हैं। १२ और १० मात्राओं पर यति होती है। अंत में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

तू दयालु दीन हौं, तु दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तु, पाप पुंज-हारी॥

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सों।
मो समान आरत नहिं, आरतहर तोसों॥
ब्रह्म तू हौं जीव तू, ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तु, सब विधि हित मेरो॥
तोहि मोंहि नाते अनेक, मानिये जु भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु, चरण शरण पावै॥

—तुलसीदास

संगीत विद्या के जाननेवाले इसे टोडीराग में भी गाते हैं।

१८-उड़ियाना

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में २२ मात्रायें होती हैं। १२ और १० मात्राओं पर विराम होता है। अंत में केवल एक गुरु होता है।

उदाहरण—

ठुमकि चलत रामचन्द्र, बाजत पैजनियाँ।
धाय मात गोद लेति, दशरथ की रनियाँ॥
तन मन धन वारि मृदुल, बोलती बचनियाँ।
कमल बदन बोल मधुर, मंद सी हँसनियाँ॥

—तुलसीदास

कोई कोई कवि इसे रेखता भी कहते हैं।

१९—रोला

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ११ और १३ मात्राओं के विराम से २४ मात्रायें होती हैं। अंत में गुरु होता है।

उदाहरण—

तरनि तनूजा तट, तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सो जल परसन, हित मनहुँ सुहाये॥
किधौं मुकुर में लखत, उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि, परम पावन फल लोभा॥

—हरिश्चन्द्र

२०—गीतिका

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १४ और १२ के विराम से २६ मात्रायें होती हैं। अंत में एक लघु-गुरु और प्रारंभ में एक लघु होता है।

उदाहरण—

कवि, काल, कालानल, कृपाकर, केतु, करुणाकंद।
सुखधाम, सत्य, सुपर्ण, सच्छिव, सर्व-प्रिय, स्वच्छंद॥
भगवान, भावुक-भक्त-वत्सल, भू, विभू, भुवनेश।
करतार! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश॥

—नाथूराम शंकर शर्मा

२१—झूलना (१)

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ७, ७, ७ और ५ मात्राओं की यति से २६ मात्रायें होती हैं। अंत में गुरु और लघु होता है।

उदाहरण—

ऋषि शृंग के, मख में यहाँ, लागे सबै, हम काज।
है बालमति, अबही तिहारो, राज को, निज काज॥
तुव धर्म नित्य, प्रजानुरंजन, निजप्रमाद, बिहाइ।
तज्जनित यश, धन प्रचुरही, रघुवंस की, प्रभुताइ॥

—लाला सीताराम

२२—विष्णुपद

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १६ और १० मात्राओं के विराम से २६ मात्रायें होती हैं। अंत में गुरु होता है।

उदाहरण—

मन वच अगम अगाध अगोचर, केहि बिधि बुधि सँचरै।
अति प्रचंड पौरुष सो मातो, केहरि भूख मरै॥
तजि उद्यम आशा बिन बैठ्यो, अजगर उदर भरै।
कबहुँक तृण बूड़त पानी में, कबहुँक शिला तरै॥

—सूरदास

इसे सूरदासजी ने 'सूरसागर' में राग धनाश्री में भी गाया है।

२३—सरसी

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १६ और ११ मात्राओं के विराम से २७ मात्रायें होती हैं। अंत में लघु होता है।

उदाहरण—

काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह की, पँचरंगी कर दूर।
एक रंग तन-मन-वाणी में, भर ले तू भरपूर॥
प्रेमप्रसार न भूल भलाई, बैर विरोध बिसार।
भक्ति-भाव से भज 'शङ्कर' को, भक्ति दया उर धार॥

—नाथूरामशङ्कर शर्मा

२४–हरिगीतिका

लक्षण—यह छंद २८ मात्राओं का होता है। १६ और १२ मात्राओं पर विराम होता है। अंत में लघु और गुरु होता है।

उदाहरण—

वाचक प्रथम सर्वत्र ही, जय जानकी जीवन कहो।
फिर पूर्वजों के चरित की, शिक्षा तरंगों में बहो॥
दुख शोक जब जो आ पड़े, सो धैर्य्य पूर्वक सब सहो।
होगी सफलता क्यों नहीं, कर्तव्य-पथ पर दृढ़ रहो।

—मैथिली शरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' और 'जयद्रथ-वध' नामक काव्य इसी इस छंद में लिखे हैं।

२५–ललित पद

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १६ और १२ मात्राओं के विश्राम से २८ मात्रायें होती हैं। अंत में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

राग-रथी-रवि-राग-पथी, अविराग-विनोद-बसेरा ।
प्रकृति-भवन के सब विभवों से सुन्दर-सरस-सवेरा ॥
एक पथिक अति मुदित उदधि के वीचि-विचुम्बित तीरे ।
सुख की भाँति मिला प्राची से, आकर धीरे धीरे ।

—रामनरेश त्रिपाठी

इस छंद को 'सार' और 'नरेन्द्र' के नाम से भी पुकारते हैं ।

२६—विधाता

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १४ और १४ मात्राओं के विराम से २८ मात्रायें होती हैं । अंत में दो गुरु होते हैं ।

उदाहरण—

जतीले जाति के सारे प्रबन्धों को टटोलेंगे ।
जनों को सत्य सत्ता की तुला से ठीक तोलेंगे ।
बनेंगे न्याय के नेगी खलों की पोल खोलेंगे ।
करेंगे प्रेम की पूजा रसीले बोल बोलेंगे ।

—नाथूराम शंकर शर्म्मा

इस छंद को गज़ल भी कहते हैं ।

२७—चौबोला

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १६ और १४ मात्राओं के विराम से ३० मात्रायें होती हैं । अन्त में गुरु होता है ।

उदाहरण—

जैसे कोई सूम अकेला, अपने धन-गृह में जाके।
झुक झुक के गिनता है धन वह, बार बार हिय-हरखा के॥
संचित धन को देख हृदय, हर्षित हो लहरें लेता है।
तद्यपि भाव नहीं तृष्णा को तोषित रहने देता है॥

—श्रीधर पाठक

२८—चवपैया

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ३० मात्रायें होती हैं। १०, ८, और १२ मात्राओं पर यति होती है। अंत में एक सगण और गुरु होता है।

उदाहरण—

भे प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौशिल्या हितकारी।
हर्षित महतारी, मुनि-मन-हारी, अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा, तनु घनश्यामा, निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला, नयन विशाला, शोभा-सिंधु खरारी॥

—तुलसीदास

२९—रुचिरा

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १४ और १६ मात्राओं के विराम से ३० मात्रायें होती हैं। अंत में लघु और गुरु होता है।

उदाहरण—

या कलि सों नहिं काल कहूँ, सहजै नर होवहिं तोर भला।
निसि द्योस सदा सत बैन गहै, हरि नाम रटै सब छोरि छला॥
या जग में इक सार यही, नर जन्म लिये कर याहि फला।
भजु रामलला भजु रामलला, भजु रामलला, भजु रामलला॥

—जगन्नाथप्रसाद 'भानु'

३०—वीर

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १६ और १५ मात्राओं के विराम से ३१ मात्रायें होती हैं। अंत में लघु होता है।

उदाहरण—

पंडित राज विष्णु शर्मा के, पंचतंत्र की पाय विभूति।
देखो अलबेली कविता में, काक-उलूकों की करतूति॥
जिसका वायस मित्र बनेगा, उसका कर देगा संहार।
फूंक दिया कपटी कौवे ने, छल कर उल्लू का परिवार॥

—नाथूरामशङ्कर शर्मा

३१—त्रिभंगी

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में १०, ८, ८, और ६ मात्राओं के विराम से ३२ मात्रायें होती हैं। अंत में गुरु होता है।

उदाहरण—

सुर काज सँवारन, अधम उधारन, दैत्य विदारन, टेक धरे।
प्रगटे गोकुल में, हरि छिन छिन में, नन्द हिये में, मोद भरे॥

धिन ताकधिना, धिन ताकधिना, धिन ताकधिना धिन ताकधिना।
नाचत जसुदा को, लखि मन छाको, तजत न वाको, एक छिना॥

—भानु

३२—दुर्मिल

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ३२ मात्रायें होती हैं। १०, ८, और १४ मात्राओं पर विश्राम होता है। अंत में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

जै जै रघुनन्दन, असुर निकंदन,
कुल मंडन यश के धारी।
जनमत सुखकारी, विपिन विहारी,
नारि अहिल्या को तारी॥
शरणागत आयो, ताहि बचायो,
राज विभीषण को दीन्हो।
दशकंध विदारो, पंथ सुधारो,
काम सुरन जन को कीन्हो॥

—तुलसीदास

३३—दण्डकला

लक्षण--इस छंद के प्रत्येक चरण में १०, ८, १४ मात्राओं के विश्राम से ३२ मात्रायें होती हैं। अंत में एक गुरु होता है।

उदाहरण—

फल फूलनि लावे, हरिहिं सुनावै,
है यह लायक भोगन की।
अरु सब गुण पूरी, स्वादनि रूरी,
हरनि अनेकन रोगन की॥
हँसि लेहिं कृपानिधि, लखि योगी विधि,
निंदति अपने योगन की।
नभ ते सुर चाहैं, भाग सराहैं,
वारत दंडक लोगन की॥
—'भानु'

३४—पद्मावती

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ३२ मात्रायें होती हैं। १०, ८ और १४ मात्राओं पर विराम होता है। अंत में दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

यद्यपि जगकर्ता, पालक हर्ता, परिपूरण वेदन गाये।
प्रभु तदपि कृपा करि, मानुष वपु धरि, थल पूँछन हमसों आये॥
सुन सुरवरनायक, राक्षस घायक, रक्षहु मुनि जन यश लीजै।
शुभ गोदावरि तट, विशद पंचवट, पर्ण कुटी प्रभु कहँ कीजै॥
—'भानु'

इस छंद को 'कमलावती' भी कहते हैं।

३५—झूलना (२)

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक चरण में ३७ मात्रायें होती हैं। १०, १०, १० और ७ मात्राओं पर विश्राम होता है। अंत में भगण होता है।

उदाहरण—

जयति हिमवालिका, असुरकुल घालिका,
कालिका मालिका, सुरस हेतू।
छमुख हेरम्ब की, अम्ब जगदंबिके !
प्राण प्रिय वल्लभा, वृषभ केतू॥
सिद्धि और ऋद्धि सुख, खान धन धान्य की,
दानि शुभगांगना, सुत निकेतू।
भुक्ति मुक्ति-प्रदे, वाणि माहारनी,
प्रणत तुलसीस को, शरण दे तू॥

—तुलसीदास

मात्रिक छंद (अर्द्धसम)

१—बरवै

लक्षण—जिस छंद के विषम अर्थात् पहले और तीसरे पदों में १२ और सम अर्थात् दूसरे और चौथे पदों में ७ मात्रायें होती हैं उसे बरवै कहते हैं। अंत में लघु होता है।

उदाहरण—

बाम अंग शिव शोभित,
शिवा उदार।
शरद सुवारिद में जनु,
तडित विहार॥
—तुलसीदास

इस छंद को 'ध्रुव' और 'कुरंग' भी कहते हैं।

२—अति बरवै

लक्षण—इस छंद के विषम अर्थात पहले और तीसरे पदों में १२ और सम अर्थात दूसरे और चौथे पदों में ६ मात्रायें होती हैं। अंत में लघु होता है।

उदाहरण—

कवि समाज को विरवा,
चले लगाय।
सींचन की सुधि लीजै,
मुरझि न जाय॥
—हरिश्चन्द्र

३—दोहा

लक्षण—इस छंद के विषम अर्थात पहले और तीसरे चरण में १३ और सम अर्थात् दूसरे और चौथे चरण में ११ मात्रायें होती हैं। अंत में लघु होता है।

उदाहरण—

मेरी भव-बाधा हरौ,
राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परै,
श्याम हरित दुति होय॥

—विहारी

४–सोरठा

लक्षण—इस छंद के सम अर्थात दूसरे और चौथे चरण में १३ और विषम अर्थात पहले और तीसरे चरण में ११ मात्रायें होती हैं। अंत में कभी गुरु कभी लघु होता है। यह दोहा छंद का उलटा होता है।

उदाहरण—

वंदौं विधि-पद-रेनु,
भव-सागर जिन कीन्ह यह।
संत सुधा ससि धेनु,
प्रगटे खल विष वारुणी॥

—तुलसीदास

५–उल्लाला (२)

लक्षण—इस छंद के पहले और तीसरे चरण में १५ और दूसरे और चौथे चरण में १३ मात्रायें होती हैं। अंत में लघु गुरु दोनों होते हैं।

उदाहरण—

दससीस मारि महि भार हरि,
असुरन कीन्ही विमल गति।
जय जयति राम रघुवंश मनि,
जाहि दीन पर नेह अति॥
—बालमुकुन्द गुप्त

मात्रिक छंद (विषम)

१—कुण्डलिया

लक्षण—यह छंद एक दोहा और एक रोला मिलने से बनता है। इसमें छः पद होते हैं। इसके प्रत्येक पद में २४ और कुल १४४ मात्रायें होती हैं। दोहा और रोला का लक्षण पीछे लिखा जा चुका है।

उदाहरण—

साईं अवसर के परे, को न सहै दुख द्वंद।
जाय बिकाने डोम घर, वे राजा हरिचन्द॥
वे राजा हरिचन्द करें, मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी भेस फिरे, अर्जुन बलधारी॥
कह गिरधर कविराय, तपै वह भीम रसोईं।
को न करे घटि काम, परे अवसर को साईं॥

हिन्दी में गिरधर कविराय की कुण्डलियाँ ख़ूब प्रसिद्ध हैं। इस छंद की रचना करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दोहा का अन्तिम चरण रोला के प्रारम्भ में दुहराना चाहिए और दोहा का प्रथम चरण संभवतः रोला के अन्तिम चरण के अन्त में आना चाहिए। इस छंद में दोहा का अंतिम चरण 'वे राजा हरिचन्द्' रोला के प्रथम चरण के प्रारम्भ में आया है और दोहा का प्रथम चरण 'साईं अवसर के परे' रोला के अन्तिम चरण के अंत में 'परे अवसर के साईं' के रूप में आया है। ऐसा करने से कुण्डलिया में मधुरता आ जाती है।

२—छप्पय

लक्षण—यह छंद एक रोला और एक उल्लाला से मिल कर बनता है। इसमें भी छः पद होते हैं। कुल १४८ मात्रायें होती हैं। रोला और उल्लाला का लक्षण पीछे लिखा जा चुका है।

उदाहरण—

शंकर सब का ईश, इष्ट मंगलदाता है।
शंकर के गुण गाय, गाय जी सुख पाता है॥
शंकर कर कल्याण, योगियों को अपनावै।
शङ्कर गौरव रूप, राम से जन जनमावै॥

श्री शंकर की प्यारी उमा, रवि सी हरि सी भासती।
रे शंकर विद्या की वही, मूल शारदा भगवती॥

—नाथूरामशङ्कर शर्मा

इस छंद को 'षटपदी' भी कहते हैं।

वर्णिक छंद

१—इन्द्रवज्रा

लक्षण—इस छंद में तगण, तगण, जगण, और दो गुरु होते हैं। कुल ग्यारह अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

ऐसे महाविक्रम शालि से भी,
जो था नहीं भीत हुआ ज़रा भी।
जो रोष की प्रस्तुत मूर्ति ही था।
सामर्थ-शाली करता नहीं क्या॥

—एक कवि

२—उपेन्द्रवज्रा

लक्षण—इस छंद में पाँच, और छ वर्णों के विराम से ग्यारह वर्ण होते हैं। इसमें जगण, तगण, जगण, और दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

स्वकीय भर्ता कर रेख माला।
निहारते ही भुज की हथेली।
हुआ उसे निश्चय भ्रांति भागी।
भुजा पुनीता मम नाथ की है॥

—विष्णु

३—शालिनी

लक्षण—इस छंद में मगण, तगण, तगण, और दो गुरु होते हैं। कुल ११ अक्षर होते हैं, ४ और ७ अक्षरों पर विराम होता है।

उदाहरण—

धीरे धीरे वार था बीत आया।
जाती जाती ऊष्णता शीतता थी।
संध्या की थी चारु बेला मनोज्ञा।
सूर्य-स्वामी डूबने जा रहे थे॥

—एक कवि

४—भुजंगी

लक्षण—इस छंद में ग्यारह वर्ण होते हैं। इसमें यगण, यगण, यगण और लघु-गुरु होता है।

बड़ाई न बाँटी बड़ों के लिए।
कड़ी तान ली तुक्कड़ों के लिए॥

समालोचको नम्रता धारिये।
महावीरता यों न विस्तारिये॥

—नाथूरामशङ्कर शर्मा

५—भुजंगप्रयात

लक्षण—इस छंद में १२ अक्षर होते हैं। ४ यगण होते हैं।

उदाहरण—

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं।
त्वदाकाशमाकाश वासं भजेहं॥

—तुलसीदास

६—त्रोटक

लक्षण—इस छंद में चार सगण होते हैं। कुल बारह अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

जय राम सदा सुख धाम हरे।
रघुनायक सायक चाप धरे॥
भव वारण दारण सिंह प्रभो।
गुण सागर आगर नाथ विभो॥

—तुलसीदास

७-वंशस्थ

लक्षण—यह छंद जगण, तगण, जगण, और रगण से मिलकर बनता है। इसमें १२ अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

प्रवाह होते तक शेष श्वास से।
सरक्त होते तक एक भी शिरा॥
सशक्त होते तक एक लोम के।
लगा रहूँगा हित सर्वभूत में॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

८-द्रुतविलंबित

लक्षण—इस छंद में १२ अक्षर होते हैं। नगण, भगण, भगण और रगण से मिल कर बनता है।

उदाहरण—

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला॥
तरु शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

९—वसंततिलका

लक्षण—इस छंद में १४ अक्षर होते हैं। तगण, भगण, जगण, जगण, और दो गुरु होता है।

उदाहरण—

पाके निदेश जिनका सब जानते हैं।
लोकेश सृष्टि रचते हरि पालते हैं॥
संहार रुद्र करते फिर है त्वदीय।
वे जानकीरमण ही प्रभु हैं मदीय॥

—मैथिलीशरण गुप्त

१०—प्रतिभाक्षरा

लक्षण—इस छंद में बारह अक्षर होते हैं। सगण, जगण, सगण और सगण से यह छंद बनता है।

उदाहरण—

सजि सो सुपेय घट मोद भरे।
चलि आव शौरि! सखि संग भरे॥
कहिहौं सुधीर हँसि कै तुमको।
प्रतिभाक्षरा जु पय दे हमको॥

—'भानु'

११—सुन्दरी

लक्षण—इस छंद में १२ अक्षर होते हैं। नगण, भगण, भगण और रगण से यह छंद बनता है।

उदाहरण—

अनुज लक्ष्मण ने रणक्षेत्र से।
मम हृदीश्वर की शुचि शीशला॥

तब समीप रखा करके कृपा।
स्वजन तर्पण अर्पण सो करो॥

—मैथिलीशरण गुप्त

१२--मोतियदाम

लक्षण--इस छंद में ४ जगण होते हैं। कुल १२ अक्षर होते हैं।

उदाहरण—

अदेवन की उर आनि अनीति।
निबाहन को नृप पालन रीति॥
सुधारन को जन को अधिकार।
धर्‌यो हरि बावन को अवतार॥

—रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण'

१३—मालिनी

लक्षण—इस छंद में आठ और सात अक्षरों के विराम से १५ वर्ण होते हैं। नगण, नगण, मगण, यगण और मगण से यह छंद बनता है।

उदाहरण—

तिल सुमन प्रभासी सिद्ध सी कंदरा सी।
अति मनहर किंवा कीर की नासिका सी।
वर विधि चतुराई की प्रमाण-स्वरूपा।
अहिवर तनयाकी नासिका शोभती थी।

—गोपीनाथ पुरोहित

१४–चामर

लक्षण—इस छंद में आठ और सात वर्णों के विराम से १५ वर्ण होते हैं । रगण, जगण, रगण, जगण और रगण से यह छंद बनता है ।

उदाहरण—

रोज़ रोज़ राधिका सखीन संग आइकै ।
खेल रास कान्ह संग चित्त हर्ष लाइकै ॥
बाँसुरी समान बोल सप्त ग्वाल गाइकै ।
कृष्ण ही रिझावती सुचामरै डुलाइ कै ॥

—जगन्नाथप्रसाद 'भानु'

१५—पंचचामर

लक्षण—इस छंद में आठ और आठ अक्षरों के विराम से १६ अक्षर होते हैं । जगण, रगण, जगण, रगण, जगण और एक गुरु से यह छंद बनता है ।

उदाहरण—

जु रोज रोज गोपतीय कृष्ण संग धावतीं ।
सुगीत नाथ चावसों लगाय चित्त गावतीं ।
कवौं खवाय दूध औ दही हरी रिझावती ।
सु धन्य छाँड़ि लाज पंच चामरै डुलावतीं ।

—'भानु'

१६—शिखरिणी

लक्षण—इस छंद में छ और ग्यारह अक्षरों के विराम से १७ वर्ण होते हैं। यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु से यह छंद बनता है।

उदाहरण—

अनूठी आभा से सरस सुखमा से सुरस से।
बना जो देती थी बहुगुणमयी भू विपिन को॥
निराले फूलों की विविध दल वाली अनुपमा।
जड़ी बूटी नाना बहु फलवती थीं विलसतीं॥

—'हरिऔध'

१७—मन्दाक्रान्ता

लक्षण—इस छंद में ४, ६, और ७ अक्षरों के विराम से १७ वर्ण होते हैं। मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु से यह छंद बनता है।

उदाहरण—

मेधा देवी विकल जब थी भारती रो रही थी।
गोरक्षा को वधिक बल की क्रूरता खो रही थी॥
कंगाली के मलिन मुख को श्री नहीं धो रही थी।
बोलो भाई तब न किसकी सभ्यता सो रही थी॥

—नाथूरामशंकर शर्मा

१८—शार्दूलविक्रीड़ित

लक्षण—इस छंद में १२ और ७ अक्षरों के विराम से १६ वर्ण होते हैं। मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, और एक गुरु से यह छंद बनता है।

उदाहरण—

आ बैठी उर मोह जन्य जड़ता, विद्या विदा हो गई।
भाई कायरता मलीन मन को हा वीरता खो गई॥
जागी दीन दशा दरिद्रपन की श्री संपदा सो गई।
भामा शंकर की हँसाय हमको रुद्रा बनी रो गई॥

—नाथूरामशङ्कर शर्मा

वर्णिक छंद में २२ वर्ण से लेकर २६ वर्ण तक कुछ छन्द प्रचलित हो गए हैं उनका नाम सवैया है। सवैया के कई भेद हैं। प्रसिद्ध प्रसिद्ध नीचे दिये जाते हैं।

१९—मदिरा (सवैया)

लक्षण—इस छंद में ७ भगण और १ गुरु होता है। कुल २२ अक्षर इसमें होते हैं। इस छन्द का नाम 'उमा' और 'दिवा' भी है।

उदाहरण—

भासत गौरि गुसाँइन का वर राम धनू दुइ खंड कियो।
मालिनि को जयमाल गुहो हरि के हिय जानकी मेलि दियो॥

रावन की उतरी मदिरा चुपचाप पयान जु लंक कियो।
राम बरी सिय मोद भरी नभ में सुर जय जयकार कियो॥
—तुलसीदास

२०—मत्तगयंद (सवैया)

लक्षण—इस छंद में ७ भगण और अंत में दो गुरु होते हैं। कुल २३ वर्णों का यह छंद होता है।

उदाहरण—

भारत गंग न तो सम आन कहूँ जग में मम ताप हरैया।
त्यों पद्माकर देव सबै तजि तो पर तारन भारहिं मैया॥
या कलि में इक तूहि सदा जन की भव पार लगावत नैया।
है तु अरी जग केहरि सी अघ मत्तगयंदहिं पार करैया॥
—पद्माकर

२१—सुमुखी (सवैया)

लक्षण—यह छंद ७ जगण और लघु-गुरु से मिलकर बनता है। इसमें २३ वर्ण होते हैं। इसको 'मल्लिका' और 'मानिनी' भी कहते हैं।

उदाहरण—

जुलोक लगे सियरामहि साथ चलैं बन माहिं फिरैं न चहैं।
हमैं प्रभु आयसु देहु चलै रउरे सँग यों कर जोरि कहैं॥
चलैं कछु दूरि नमैं पग धूरि भले फल जन्म अनेक लहैं।
सिया सुमुखो हरि फेरि तिन्हैं बहु भांतिन तें समुझाइ कहैं॥
—'भानु'

२२—किरीट (सवैया)

लक्षण—इस छंद में आठ भगण होते हैं । इसमें कुल २४ वर्ण होते हैं ।

उदाहरण—

हे करतार ! विनै सुनौ दास की लोकन को अवतार करचो जनि ।
लोकन को अवतार करचो तो मनुष्यन को तो सँवार करचो जनि ॥
मानुष हू को सँवार करचो तो तिन्हें बिच प्रेम पसार करचो जनि ।
प्रेम पसार करचो तो दयानिधि केहूँ वियोग विचार करचो जनि ॥

—भिखारीदास

२३—दुर्मिल (सवैया)

लक्षण—इस छंद में आठ सगण होते हैं । कुल २४ वर्ण होते हैं ।

उदाहरण—

सबसों कर नेह भजौ रघुनन्दन राजत हीरन माल हिये ।
नवनीलवधू कल पीत झंगा झलकें अलकैं घुँघरारि हिये ॥
अरविन्द समानन रूप मरंद अनंदित लोचन भृंग पिये ।
तुलसी हिय में न बसा अस बालक तो जग में फल कौन जिये ॥

—तुलसीदास

२४—अरसात (सवैया)

लक्षण—इस छंद में ७ भगण और एक रगण होता है । कुछ २४ वर्ण होते हैं ।

उदाहरण—

जा थल कीन्हें विहार अनेकन ता थल काँकरी वैठि चुन्यो करैं।
जा रसना ते करी बहु बातन ता रसना सो चरित्र गुन्यो करैं॥
'आलम' जौन से कुंजन में करि केलि जहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैननि में जो सदा रहते तिनकी अब कान्ह कहानी सुन्यो करैं॥

—आलम

२५—सुन्दरी (सवैया)

लक्षण—इस छंद में आठ सगण और एक गुरु होता है। कुल पच्चीस वर्ण होते हैं।

उदाहरण—

सबसों गहि पाणि मिले रघुनन्दन भेटि कियो सबको बड़भागी।
जबही प्रभु पांव धरे नगरी महँ ताछिन तें विपदा सब भागी॥
लखिके विधु पूरण आनन मातु लह्यो मुदसों मृत सोवत जागी।
तुलसी यहि औसर सुन्दर मूरति राखि जपैं हिय में अनुरागी॥

—तुलसीदास

२६—मुक्तक

मुक्तक छंद उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक चरण में केवल अक्षरों की संख्या की गणना की जाय। इसमें मात्रा और गण का कोई नियम नहीं है। भिखारीदास ने लिखा है—

अक्षर की गिनती सदा, कछु कहुँ गुरु लघु नेम।
वर्ण वृत्त में ताहि कवि, मुक्तक कहैं सप्रेम॥

इसके सात भेद माने गये हैं। उनमें से मुख्य नीचे दिये जाते हैं।

२७–मनहरण

लक्षण—इस छंद में १६ और १५ वर्ण के विश्राम से इकतीस वर्ण होते हैं। अंत में गुरु होता है। इसे कवित्त भी कहते हैं।

रैया राव चम्पति को चढ़ो छत्रसालसिंह,
भूषण भनत समसेर जोर जमकैं।
भादौं की घटा सी उठी गरदैं गगन घेरे,
सेलैं समसेरैं करैं दामिनी सी दमकैं॥
खान उमरावन के आन राजा रावन के,
सुनि सुनि उर लागै घन कैसी घमकैं।
बैहर बगारन की अरि के अगारन की,
नांघती पगारन नगारन की धमकैं॥

—भूषण

२८—रूप-घनाक्षरी

लक्षण—इस छंद में ३२ वर्ण होते हैं। सोलह-सोलह वर्ण पर विश्राम होता है। अंत में गुरु-लघु अवश्य होता है। नीचे के छंद में लक्षण और उदाहरण दोनों दिये जाते हैं—

रूपक घनाक्षरिहुँ गुण लघु नियम न,
बत्तिस वरन कर रचिये चरन चारि।

कीजै बिसराम आठ आठ आठ आठ करि,
अंत एक लघु धरो त्यों नियम करि धारि ॥
या विधि सरल भाग छंद गुरु सेसनाथ,
कीनों कविराजन के काज बुद्धि तें विचारि।
पद्य सिंधु तरिबे को रचना के करिबे को,
पिंगल बनायो भेद पढ़ि सुद्धि कै सुधारि ॥

—छंद-विनोद

२९—देव-घनाक्षरी

लक्षण—इस छंद में आठ, आठ, आठ और ९ अक्षरों के यति से ३३ अक्षर होते हैं। अंत में तीन वर्ण लघु होते हैं—

उदाहरण—

झिल्ली झनकारै पिक चातक पुकारैं बन,
मोरनि गुहारै उठै जुगनू चमकि चमकि।
घोर घनकारे भारे धुरवा धुरारे धाय,
धूमनि मचावैं नाचैं दामिनि दमकि दमकि ॥
फूकनि बयारि बहै लूकनि लगावे अंग,
हूकनि भभूकनि की उर में खमकि खमकि।
कैसे करि राखौं प्रान प्यारे जसवंत बिना,
नान्हीं नान्हीं बूँद झरै मेघवा झमकि झमकि ॥

—जसवंत सिंह

३०—कृपाण (दंडक)

लक्षण—इस छंद में ८, ८, ८, ८ वर्णों के विश्राम से ३२ वर्ण होते हैं। इस छंद में वीर रस का वर्णन होता है।

उदाहरण—

चली ह्वै के विकराल, महाकालहू को काल,
किये दोऊ दृगलाल, धाइ रन समुहान।
जहाँ क्रुद्ध ह्वै महान, युद्ध करि घमसान,
लोथि लोथि पै लदान, तड़पी ज्यों तड़ितान॥
जहाँ ज्वाल कोट भान, के समान दरसान,
जीवजंतु अकुलान, भूमि लागी थहरान।
तहाँ लागे लहरान, निसिचरहू परान,
वहाँ कालिका रिसान, झुकि झारी किरपान॥

—जगन्नाथप्रसाद 'भानु'

प्रस्तार-निर्णय

१--प्रस्तार की परिभाषा

प्रश्न—प्रस्तार किसे कहते हैं ?

उत्तर—लघु गुरु होने के कारण एक अक्षर के छंद के दो भेद हो सकते हैं । जैसे म ।, मा S, और दो अक्षर के छंद के चार भेद हो सकते हैं । जैसे रामा SS, रमा ।S, राम S। और रम ॥ इसी प्रकार यह बतलाना कि नियत वर्ण-संख्या के छंद के लघु गुरु विपर्यय होने से कौन कौन से रूप हो सकते हैं, वर्ण-प्रस्तार कहलाता है।

दो मात्रा के दो छंद होते हैं । जैसे ॥ तथा S, मन और मा । तीन मात्रा के छंद के तीन भेद होते हैं । जैसे ।S, S। ॥, रमा, राम और रम । इसी प्रकार किसी नियत मात्रावाले छंद के, गुरु लघु के अन्तरानुसार, सब रूप बतलाने को मात्रा-प्रस्तार कहते हैं ।

प्रश्न—प्रस्तार के कितने अंग हैं ?

उत्तर—वर्ण प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, मेरु, पताका और मर्कटी । कुछ लोगों का विचार है कि प्रस्तार में अंगों का नाम प्रत्यय है ।

२—वर्ण-प्रस्तार

प्रश्न—वर्ण-प्रस्तार की रीति बतलाओ ?

उत्तर—जितने वर्ण का प्रस्तार करना हो उतने ही गुरु-चिह्न एक पंक्ति में लिखना चाहिए यह प्रथम रूप है। फिर सब से बायें ओर के गुरु के नीचे लघु लिखना चाहिए और दाहिनी ओर शेष सब चिह्न ज्यों के त्यों उतार लेने चाहिएँ, यह दूसरा रूप है। फिर दूसरे रूप के नीचे सब से बायें गुरु के नीचे लघु लिख कर दाहिनी ओर के सब चिह्न ज्यों के त्यों उतार कर इस लघु के बाईं ओर सब गुरु लिख कर पंक्ति पूरी करनी चाहिए। इसी प्रकार रूप लिख ले जाने पर जब सब लघु हो जायँ तब समझना चाहिए कि प्रस्तार पूरा हो गया। उदाहरण के लिये।

दो वर्ण का प्रस्तार—१—SS, २— IS, ३— SI, ४— II

तीनवर्ण का प्रस्तार—१—SSS (मगण) २— ISS (यगण) ३— SIS (रगण) ४—IIS (सगण) ५—SSI (तगण) ६—ISI (जगण) ७—SII (भगण), ८—III (नगण)

पाँच वर्ण का प्रस्तार—१—SSSSS, २— ISSSS, ३—SISSS, ४—IISSS, ५—SSISS, ६—ISISS, ७—SIISS. ८—IIISS, ९—SSSIS, १०—ISSIS, ११—SISIS, १२—IISIS, १३—SSIIS १४—ISIIS, १५—SIIIS १६— IIIS, १७—SSSSI, १८—ISSSI, १९—SISSI, २०— IISSI, २१—SSISI, २२—

।ऽ।ऽ।, २३—ऽ।।ऽ।, २४—।।।ऽ।, २५—ऽऽऽ।। २६—।ऽऽ।।, २७—ऽ।ऽ।।, २८—।।ऽ।।, २९—ऽऽ।।।, ३०—।ऽ।।।, ३१—ऽ ।।।।, ३२—।।।।।

३—नष्ट

प्रश्न—नष्ट प्रश्न किसको कहते हैं ?

उत्तर—यदि कोई पूछे कि इतने वर्ण के प्रस्तार में अमुक भेद कैसे होगा तो इसे नष्ट प्रश्न कहते हैं। जैसे ४ वर्ण-प्रस्तार में सातवें भेद का क्या रूप होगा अथवा ५ वर्ण के प्रस्तार में सोलहवाँ भेद क्या होगा । इस प्रकार के प्रश्न नष्ट प्रश्न कहलाते हैं। इसका उत्तर नष्ट प्रकार से दिया जाता है ।

प्रश्न—नष्ट-विचार की रीति बतलाओ और उदाहरण दो।

उत्तर—जो भेद पूँछा जाय उस अंक को देखना चाहिए कि वह सम है अथवा विषम । यदि सम है तो पहले लघु का रूप (।) लिखना चाहिए, यदि विषम है तो गुरु का चिन्ह (ऽ) लिखना चाहिए। इसके बाद उस अङ्क को आधा करना चाहिए। परन्तु यदि वह विषम है तो एक जोड़ कर आधा कर लेना चाहिए । जब आधा करने पर विषम अंक आवे, गुरु और सम आवे तब लघु लिखना चाहिए। इस प्रकार बार बार आधा करते चलना चाहिए और उस समय तक विषम पा कर गुरु और सम पाकर लघु लिखना चाहिए जब तक वर्ण की संख्या पूरी न हो जाय । नीचे के छंद को याद कर लेने से सुविधा होगी।

विषम पाय गुरु, सम लघु लैये।
आधी करि करि नष्ट बतैये॥

जैसे कोई पूछे कि पाँच वर्ण के प्रस्तार में ग्यारहवाँ भेद क्या है? इसमें ११ विषम अंक है इसलिए पहले (ऽ) गुरु लिखना चाहिए। फिर ग्यारह का आधा करना चाहिए, परन्तु ११ के विषम होने के कारण १ जोड़ कर १२ करके उसका आधा किया तो ६ आया। उसका आधा किया तो ३ हुआ। यह विषम अंक है इसलिए (ऽ) गुरु लिखा। फिर २ का आधा किया तो १ आया। यह भी विषम है, इसलिए (ऽ) गुरु लिखा गया। इस प्रकार पाँच चिह्न पूरे हो गए। इसलिए उत्तर आया ऽ।ऽ।ऽ। ९० और ९१ पृष्ठ में ५ वर्णों के प्रस्तार में ११ भेद इसी का उदाहरण है।

प्रश्न—४ वर्ण के प्रस्तार में छठा भेद बतलाओ।

उत्तर—६ सम है इसलिए (।) लघु हुआ। ६ का आधा तीन हुआ परन्तु यह विषम है इसलिए यहाँ (ऽ) गुरु लिखा जायगा। फिर एक जोड़ कर चार का आधा किया, शेष दो रहा, परन्तु यह सम है इसलिए (।) लघु लिखा गया। दो का आधा किया तो १ रहा परन्तु यह विषम होने कारण (ऽ) गुरु लिखा गया। चारों वर्ण हो गए। इसलिए ४ वर्णों के प्रस्तार में छठवाँ रूप ।ऽ।ऽ है।

प्रश्न—विविध संख्याओं के वर्ण-प्रस्तारों में कोई समता आपस में होती है या नहीं ?

उत्तर—होती है। वह समता यह होती है कि प्रस्तार चाहे जितने वर्ण का हो, परन्तु क्रम से एक प्रस्तार का कोई भेद दूसरे प्रस्तार के उसी भेद के सदृश ही होगा। भिन्नता केवल यह होगी कि जिस प्रस्तार में वर्ण अधिक हैं उसमें अल्प वर्ण वाले प्रस्तार से उतने ही अधिक चिन्ह एक पंक्ति में होंगे। उदाहरणार्थ—

५ वर्ण के प्रस्तार का चौदहवाँ भेद				। S ॥ S
६ वर्ण के प्रस्तार का			,,	। S ॥ S S
७	,,	,,	,,	। S ॥ S S S
८	,,	,,	,,	। S ॥ S S S S

इससे यह भली भाँति प्रगट होता है कि प्रस्तार चाहे जितने वर्ण का हो परन्तु क्रम से प्रत्येक प्रस्तार में, विशिष्ट संख्या वाले—जैसे सातवें और नवें रूप आदि की ओर से एक समान होते हैं। इस समता को अधिक समझाने के लिए ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, वर्ण के प्रस्तारों का सोलहवाँ रूप यहाँ लिखा जाता है।

५—। । । । S, ६—। । । । S S, ७—। । । । S S S, ८—। । । । S S S S ९—। । । । S S S S S १०—। । । । S S S S S S, ११—। । । । S S S S S S S, १२—। । । । S S S S S S S S।

४—उद्दिष्ट

प्रश्न—उद्दिष्ट किसको कहते हैं ?

उत्तर—किसी रूप के सम्बन्ध में यह बतलाना कि अमुक रूप इतने वर्ण के प्रस्तार में अमुक भेद है । 'उद्दिष्ट' कहलाता है।

प्रश्न—उद्दिष्ट रीति की विधि क्या है ?

उत्तर—प्रश्न वाले रूप को लिखकर उसके प्रति चिन्ह के नीचे एक से लेकर दूने दूने अङ्क लिखना चाहिए।

प्रश्न—'।ऽ।ऽ।ऽ' में कौन सा भेद है।

उत्तर— ऽ । ऽ । ऽ

१ २ ४ ८ १६

लघु के नीचेवाले अंक जोड़ने से (२+८) १० होते हैं। इसमें १ मिलाने से ग्यारह होते हैं। यह ग्यारहवें भेद का रूप है। पीछे पाँच वर्ण के प्रस्तार में ग्यारह का भेद देखने से यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी । उद्दिष्ट के स्मरण रखने के लिए यह चौपाई उपयोगी होगी।

इकते दुगुन अंक लिखि जैये।
जोड़िन का लघु एक बढ़ैये॥

प्रश्न—'।ऽऽ।' कौन सा भेद है ?

उत्तर—। ऽ ऽ ।

१ २ ४ ८

अर्थात् १+८=९। ९+१=१० दसवाँ भेद है।

इतने वर्ण के प्रस्तार में सब कितने भेद हैं? यदि यह प्रश्न किया जाय तो इसका उत्तर यह होगा कि जितने वर्ण का प्रस्तार हो उतने बार दो से लेकर दूने अंक लिखे। अंत में जो अंक हो वही संख्या है। जैसे कोई चार वर्ण के प्रस्तार में भेदों की सारी संख्या पूंछे तो २, ४, ८, और १६ तक चार बार दूने दूने अंक लिखने पर १६ उत्तर आवेगा। पाँच वर्ण होने पर उत्तर ३२ और ६ वर्ण होने पर उत्तर ६४ आवेगा।

प्रश्न – क्या वर्ण-प्रस्तारों के भेदों की संख्या बतलाने की कोई और सुगम रीति है या नहीं?

उत्तर—इसका गुर नीचे दिया जाता है—

भेद—संख्या $=२^{क}$। यहाँ 'क' वर्ण संख्या है।

प्रश्न—पांच वर्ण के प्रस्तार में कितने भेद होंगे?

उत्तर—भेद-संख्या $=२^{५}=२\times२\times२\times२\times२=३२$।

इसी प्रकार ६ वर्ण के प्रस्तार में ३२ और १५ वर्ण के प्रस्तार में २१५ भेद होंगे।

५—मेरु

प्रश्न—मेरु-चक्र किस प्रकार बनता है? उसके बनाने की विधि क्या है? प्रस्तार के विषय में मेरु का क्या उपयोग होता है?

उत्तर—पाँच वर्ण का प्रस्तार नीचे लिखे प्रकार बनता है :

१ क	ख १

ग १	घ १	च १

छ १	ज ३	झ ३	ट १

ठ १	ड ४	ढ ६	त ४	थ १

द १	ध ५	प १०	फ १०	ब ५	भ १

इस मेरु-चक्र में अक्षर क, ख, आदि सिर्फ़ पाठकों को अंक जोड़ कर भरने की विधि स्पष्ट रीति से बतलाने के लिए लिखे गए हैं । जितने वर्ण का मेरु बनाना हो उससे एक अधिक कोठा बनाना चाहिए और इसी प्रकार कोठे बनाते जाना चाहिए। अंत में सब से ऊपर दो कोठे बनेंगे । उदाहरण के के लिए ६ कोठों पर ५, ५ पर ४, ४ पर ३, ३ पर २ कोठे होने चाहिएँ। सब कोठे बराबर के होने चाहिएँ । जिससे कि चक्र देखने में सुन्दर जान पड़े । दो दो कोठों पर ऊपर का कोठा इस प्रकार बनाना चाहिए कि उसकी दाहिनी और बाईं भुजायें नीचे वाले कोठों के बीच में रहें ।

अंक भरने की विधि—ऊपर के दोनों कोठों में और अन्य सब पंक्तियों के दाहिने और बायें छोर के कोठों में १ लिखना

चाहिए । फिर ऊपर को ओर से खाली कोठों को इस प्रकार भरना चाहिए कि प्रत्येक कोठे में वह अंक लिखें जायँ जो उसके ऊपर दोनों कोठों के अंकों का जोड़ हो । जैसे 'क' 'ख' वाले कोठों का जोड़ 'घ' में 'ग' 'घ' का जोड़ 'ज' में 'घ' 'च' का जोड़ 'झ' में 'छ' 'ज' का जोड़ 'ड' में 'ज' 'झ' का जोड़ 'ढ़' में लिखना चाहिए।

मेरु का उपयोग—मान लिया कि कोई प्रश्न करे कि वर्ण के प्रस्तार में कितने भेद हैं और उनमें से कितने चर्तुगुरु, कितने त्रिगुरु इत्यादि हैं; तो बिना प्रस्तार के ही केवल मेरु से ही इसका उत्तर मिल जाता है । जैसे—पाँच वर्ण का प्रस्तार पहले दिया जा चुका है । इससे यह प्रकट होता है कि पहले भेद में सब पाँचों गुरु हैं । पाँचों भेदों में प्रत्येक में चार गुरु और एक लघु है। १० भेद ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक में २ गुरु ३ लघु हैं । पांच भेदों में प्रत्येक १ गुरु, चार लघु हैं और एक भेद ऐसा है जिसमें पाँच लघु हैं । यह सारा व्योरा ३२ भेदों का हुआ । यही विवरण मेरु से भी प्रकट हो जाता है । ऊपर के पाँच वर्ण के सबसे नीचे वाली पंक्ति देखने से साफ़ प्रकट होता है । जैसे ५ का मेरु बनाया जाता है उसी प्रकार कम या ज्यादा संख्याओं का मेरु भी बन सकता है।

६ वर्ण के मेरु को देखिये—

१	१	१					
२	१	२	१				
३	१	३	३	१			
४	१	४	६	४	१		
५	१	५	१०	१०	५	१	
६	१	६	१५	२०	१५	६	१

यदि हम ५ वर्ण के मेरु से इसकी तुलना करें तो मालूम होता है कि ऊपर की पाँच पंक्तियां पाँच वर्ण के मेरु की पंक्तियों के समान हैं। इसलिए जिस तरह कम ज्यादा वर्णों के प्रस्तारों के एक हो (८ वाँ १० वाँ कोई) भेद बाईं ओर से समान होते हैं, इसी प्रकार मेरु की ऊपर की पंक्तियाँ समान होती हैं। कहने का मतलब यह है कि यदि ६ वर्ण का मेरु बनाने के बाद ७ वर्ण का मेरु बनाना हो तो पहले मेरु में केवल एक और पंक्ति सबसे नीचे लिखनी चाहिए। ६ वर्णों के मेरु में ५,४ आदि ६ से कम वर्णों का मेरु शामिल है।

मेरु से यह जाना जाता है कि इतने वर्ण के प्रस्तार के कितने भेद होते हैं और उनमें कितने द्विगुरु, त्रिगुरु इत्यादि हैं। जैसे ४ वर्ण के प्रस्तार में सब १+४+६+४+१=१६ भेद

हैं। उसमें एक सर्वगुरु अर्थात् चतुर्गुरु, ४ त्रिगुरु, ६ द्विगुरु, ४ एक गुरु और १ सर्व लघु होते हैं। ६ वर्ण के ऊपर लिखे हुए भेद की चौथी पंक्ति देखिये, और प्रस्तार करके जाँचिये। इसमें गुरु और लघु इस प्रकार जाने जा सकते हैं कि पहले सब गुरु फिर क्रम से गुरु कम होते जाते हैं और लघु बढ़ते जाते हैं। अंत में एक सर्वलघु होता है।

प्रश्न—१०, १५, २० के वर्ण के प्रस्तार में कितने दसगुरु, नवगुरु इत्यादि होंगे ? क्या बिना पूरा मेरु-वक्र बनाये हुए कोई सरल विधि उत्तर देने की है ?

उत्तर—बिना मेरु-चक्र बनाये हुए भी जितने वर्ण की पंक्ति चाहे बना सकते हैं। जैसे ऊपर की ६ वर्ण वाली पंक्ति बनानी हो तो पहिले दाहिने हाथ की ओर से आरंभ करके १ से ७ तक गिनती लिखना चाहिए और १ इस प्रकार लिखना चाहिए। १६५ ४३२१। फिर उसी पंक्ति के नीचे बाईं ओर से प्रारंभ करके वही गिनती लिखनी चाहिए परन्तु बाईं ओर के १ के नीचे कुछ न लिखना चाहिए। जैसे—

१ ६ ५ ४ ३ २ १
  १ २ ३ ४ ५ ६

इसके बाद १ को ज्यों का त्यों उतार लेना चाहिए। वह पंक्ति का पहला अंक होगा। आगे के अंक इस प्रकार प्राप्त होंगे उस १ को ७ से गुणा करना चाहिए और ६ के नीचे वाले १ से भाग देने से दूसरा अंक ६ प्राप्त हो जायगा। फिर इस ६

को ऊपर के पंक्ति के अगले अंक ५ से गुणा करके, नीचे की पंक्ति के अगले अंक दो से भाग देना चाहिए। अब १५ प्राप्त हुआ जो मेरु की पंक्ति का तीसरा अंक है। इसी नियम से पूरी पंक्ति तैयार की जा सकती है। उत्तर इस प्रकार है—

१, ६, १५, २०, १५, ६, १

अब ८ वर्ण के मेरु में १ वर्ण की पंक्ति कैसी होगी इसको भी देखना चाहिए।

१ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

$$१, \frac{१ \times ८}{१} = ८, \frac{८ \times ७}{२} = २, \frac{२८ \times ६}{३} = ५६ \frac{५६ \times ५}{४} = ७०$$

$$\frac{७० \times ४}{५} = ५६, \frac{५६ \times ३}{६} = २८, \frac{२८ \times २}{७} = ८, \frac{८ \times १}{८} = १$$

लकीर—१, ८, २८, ५६, ७०, ५६, २८, ८, १

६—पताका

प्रश्न—पताका-चक्र बनाने की क्या विधि है। इसका क्या उपयोग है?

उत्तर—मेरु-चक्र से तो इतना जाना जाता है कि इतने वर्ण के प्रस्तार में इतने पंचगुरु, चतुर्गुरु इत्यादि रूप होते हैं। परन्तु

वह रूप प्रस्तार-श्रेणी में कहाँ स्थित है, अर्थात् प्रथम, द्वितीय, और तृतीय इत्यादि भेद है, पताका-चक्र से जानी जाती है। जैसे मेरु-चक्र से जाना गया है कि ५ वर्ण के प्रस्तार में १ पंचगुरु, चतुर्गुरु, १० त्रिगुरु, १० द्विगुरु, ५ एक गुरु और १ सर्व लघु होते हैं। अब यदि यह जानना हो कि वह पांच चतुर्गुरु कौन से भेद हैं तो पताका-चक्र से उत्तर दिया जायगा कि दूसरा, तीसरा, पाँचवाँ, नवाँ और सतरहवाँ। नीचे के पताका-चक्र और पिछे दिये हुए ५ वर्ण के प्रस्तार मेरु की एक पंक्ति का प्रस्तार पताका है। इसकी विधि यह है कि जितने वर्ण की पताका बनाना हो उतने पंक्ति वाली पंक्ति मेरु-चक्र की लिखनी चाहिए। इसे हम 'अ' पंक्ति कहेंगे। फिर खड़े कोठे बनाकर पंक्ति के नीचे बाईं ओर से १ से लेकर दूने-दूने अंक लिख लेना चाहिए। इसे 'आ' पंक्ति कहेंगे।

अ	१	५	१०	१०	५	१
	१	२	४	८	१६	३२
आ	ग	घ	ङ	च	छ	ज

अब इस 'आ' पंक्ति के भिन्न भिन्न अंकों का नाम हम 'ङ' इत्यादि अक्षर रखते हैं। जिसमें खड़े कोठों को भरने की विधि बतलाने में सुगमता हो।

पाँच वर्ण की पताका का उदाहरण इस प्रकार है—

१	५	१०	१०	५	१
१	२	४	८	१६	३२
	३	६	१२	२४	
	५	७	१४	२८	
	९	१०	१५	३०	
	१७	११	२०	३१	
		१३	२२		
		१८	२३		
		१९	२६		
		२१	२७		
		२५	२९		

पहली बात यह है कि 'अ' पंक्ति वाले के नीचे केवल एक ही अंक रहेगा। क्योंकि पांच वर्ण के प्रस्तार में एक ही पंचगुरु होता है। इसी तरह पांच के नीचे ५ अंक आवेंगे क्योंकि ५ चतुर्गुरु होते हैं। इसी तरह पंक्ति के शेष अंकों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि किस खड़ी पंक्ति में कितने अंक भरे जायेंगे।

अंक भरने की रीति—पहले खड़े कोठे में एक लिखा ही है। दूसरे खड़े कोठे में २ लिखा है। उसके नीचे इ+ई=३ लिखो, फिर उसके नीचे वही ३+इ=५ लिखो, फिर उसके नीचे वही ५+उ=९ लिखो, फिर उसके नीचे वही ९+ऊ=१७ लिखो। दूसरा कोठा समाप्त हो गया।

नियम यह है कि जो अंक जोड़ने से मिले उसी को 'इ' से जोड़ना चाहिए। इस जोड़ से जो अंक आवे उसे 'ई' से जोड़ो, और जो जोड़ अंक से आवे उसे 'उ' से जोड़ो। इसी

नियम से जितने अंकों की आवश्यकता जिस कोठे में हो उतने अंक जो जोड़ से मिलते जावें यही, फिर दूसरे कोठे में अंक भरना प्रारंभ करो। यहाँ एक आवश्यक बात स्मरण रखने योग्य है यह है कि जो अंक एक बार आ चुका हो वह पुनः नहीं लिखा जायगा, वरन् उसके आगे वाला अंक लिखा जायगा। जब कभी इस प्रकार आया हुआ अंक छोड़ कर उसके आगे अंक लिखा जायगा तो जोड़ने का क्रम फिर 'आ' पंक्ति के आदि से अर्थात् 'इ' के प्रारंभ हो जायगा। उक्त नियमों को स्मरण रख कर तीसरा कोठा भरो। तीसरे कोठे में ४ लिखा है। उसके तले २+४=६ लिखो, उसके नीचे ६+इ=७ लिखा, उसके नीचे वही ७+ई=९ लिखना चाहिए परन्तु ९ आ चुका है। इसलिये १० लिखना चाहिए। नियमानुसार अब जोड़ने का प्रारंभ क्रम से फिर 'इ' से प्रारंभ होगा। उस १० के नीचे वही १०+इ=११ लिखो, उसके नीचे ११+ई=१३ लिखो, उसके नीचे १३+उ=१७ न लिख कर १८ लिखो। उसके नीचे १८+इ=१९ लिखो, उससे नीचे १९+ई=२१ लिखो, उसके नीचे २१ + उ = २५ लिखो। तीसरा कोठा पूरा हो गया।

चौथे कोठे में आठ लिखा ही हुआ है। उससे नीचे ८+४ =१२ लिखो और इस १२ को 'इ' से जोड़ो और ऊपर के नियमों के अनुकूल इस कोठे में १० अंक पूरे करो। इसी प्रकार बाकी कोठे भरो।

पांच वर्ण का प्रस्तार देखने से मालूम होता है कि उसमें दस त्रिगुरु रूप हैं। अर्थात्, चौथा, छठां, सातवां, दसवाँ, ग्यारहवाँ, तेरहवाँ, अठारवाँ उन्नीसवाँ, इक्कीसवाँ पच्चीसवाँ।

पताका-चक्र को देख कर यह स्पष्ट विदित है कि चतुर्गुरु वाले, त्रिगुरु वाले, इत्यादि रूप कौन कौन से स्थान में हैं। यदि कोई कहे कि वह रूप लिखो तो नष्ट-रीति को काम में लाना चाहिए। जैसा ५ वर्ण की पताका से मालूम हुआ कि आठवाँ बारहवाँ, चौदहवाँ, इत्यादि १० द्विगुरु और हैं। नष्ट से उनके रूप ।।।SS, ।।S, ।S; ।S ।।S इत्यादि ज्ञात होते हैं।

७—मर्कटी

प्रश्न—नष्ट, मेरु और पताका, की विधि तथा उनका आपस का सम्बन्ध ज्ञात हुआ, अब मर्कटी की विधि और उपयोग बताओ।

उत्तर—मर्कटी वह चक्र है जिससे प्रस्तार के वृत्त-भेद मात्रा, वर्ण गुरु, लघु की सारी संख्या मालूम होती है। जैसे ३ वृत्त का प्रस्तार यह है—SSS, ।SS, S।S, ।।S, । S ।, S।।, ।।।, तो गिनती से विदित है कि ३ वृत्त के प्रस्तार में ८ भेद, ३६ मात्रा २४ वर्ण १२ गुरु और लघु हैं।

विधि—जितने वर्ण की मर्कटी बनाना हो उतने खड़े कोठे बनाओ और उनके कटाते हुए ६ आड़े कोठे बनाओ। इनके

आदि में वृत्त, भेद इत्यादि नाम लिख दो। यह ६ पंक्तियाँ इस व्याख्या में पहली दूसरी कही जायँगी। १० वर्ण की मर्कटी इस प्रकार है—

वृत्त	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
भेद	२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२	१०२४
मात्रा	३	१२	३६	९६	२४०	५७६	१३४४	३०७२	६९१२	१५३६०
वर्ण	२	८	२४	६४	१६०	३८४	८९६	२०४८	४६०८	१०२४०
गुरु	१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८	१०२४	२३०४	५१२०
लघु	१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८	१०२४	२३०४	५१२०

पहली पंक्ति में १, २ इत्यादि लिखो, दूसरी पंक्ति में २ से लेकर दूने-दूने अंक २, ४, ८ इत्यादि लिखो। चौथी पंक्ति को पहली और दूसरी पंक्ति के अङ्कों को गुणा करके धरो, इस प्रकार—१×२=२, २×४=८, ३×८=२४। चौथी पंक्ति के अङ्कों को आधा करके पांचवीं और छठवीं पंक्ति में पांचवीं और चौथी के अङ्कों का जोड़ भरो। इस प्रकार—१×२=३, ४+८=१२, १२+२४=३६ इत्यादि।

प्रश्न—४ वर्ण के प्रस्तार में कितने वर्ण मात्रा इत्यादि होंगे?

उत्तर—४ वृत्त, १६ भेद, ९६ मात्रा, ६४ वर्ण, ३२ गुरू ३२ लघु।

८—एकावली मेरु

प्रश्न—वर्ण के एकावली मेरु की विधि बतलाओ।

उत्तर—सब से पहले दो कोठे आड़ी पंक्ति में; फिर उनके नीचे ३ कोठे, फिर उसके नीचे ४ कोठे, इसी क्रम से बनाते हुए बढ़ाओ। इस प्रकार प्रत्येक पंक्ति ऊपरवाली पंक्ति से एक कोठा भर दाहिनी ओर बढ़ी रहे और बाईं ओर सब पंक्तियाँ एक सीध में हों। नीचे का चक्र देखिए—

१ वर्ण	१ क	१ ख				
२ ”	१ ग	घ २	च १			
३ ”	१ छ	ज ३	झ ३	ट १		
४ ”	१ ठ	४ ड	६ ढ	४ त	थ १	
५ ”	१	५	१०	१०	५	१

फिर बाईं ओर के सब कोठों में १ लिखो, और दाहिनी ओर भी सब कोठों में १ लिखो। फिर एक कोठे का अङ्क उसके बाईं ओर वाले कोठे के अङ्क में जोड़कर उसके नीचे वाले कोठे में लिखो, जैसे ख+क=घ, घ+ग=ज, च+घ=झ, इत्यादि।

९—वर्णखंड मेरु

प्रश्न—वर्णखण्ड मेरु की विधि बतलाओ?

उत्तर—वर्ण संख्या से एक अधिक कोष्ट में आड़ी पंक्ति बनाओ। उसके नीचे उससे एक कम कोठे बनाओ, इस प्रकार कि दाहिनी ओर ऊपर वाली पंक्ति एक कोठा अधिक बढ़ी रहे। उसके नीचे इसी प्रकार और कोठा बनाते जाओ जब तक सबसे नीचे एक कोठा न बने। नीचे का चक्र देखिए—

क १	ख १	ग १	घ १	१ य	१ ध
च २	छ ३	ज ४	झ ५	६ प	
ट ३	ठ ६	ड १०	फ १५		
ढ ४	त १०	ब २०			
थ ५	भ १५				
द ६					

१

सब से ऊपर की पंक्ति में प्रत्येक कोठे में १ लिखो और बाईं ओर खड़ी पंक्ति में भी १, २, ३, इत्यादि लिखो और नैऋत्य कोने में १ लिखो, फिर कोठे इस भाँति भरो कि एक कोठा और उसके नैऋत्ववाला कोठा इन दोनों के अंक जोड़कर उस नैऋत्य वाले कोठे के पूर्व दिशावर्ती कोठे में रक्खो, जैसे ख+च=छ, ग+छ=ज, ठ+ढ=त, इत्यादि।

अब हर आड़ी पंक्ति के अन्त वाले ध, प, फ, ब, भ, द और कोने वाला १ यही वर्ण के प्रस्तार में उत्तर है। तथा ५

वर्ण के प्रस्तार में य, भ, त, थ, अर्थात् १, ५, १०, १०, ५, १, यही उत्तर हैं। इसी क्रम से सब समझना चाहिए।

१०—मात्रा-प्रस्तार

प्रश्न—मात्रा प्रस्तार की रीति लिखो ?

उत्तर—यह तो ज्ञात ही हो चुका है कि एक मात्रा का चिन्ह '।' है और दो मात्रा का चिन्ह 'ऽ' है। जितनी मात्राओं का प्रस्तार करना हो उनको गुरु-चिन्हों के द्वारा एक पंक्ति में लिखो। यदि मात्राओं की संख्या विषम हो तो १ मात्रा जो बचे उसका लघु चिन्ह बाएँ छोर पर लिखो। हम इसी छोर को पंक्ति का आदि कहेंगे। फिर पंक्ति के आदि में जो गुरु चिन्ह हो उसके नीचे लघु लिखो और उसको दाहिनी ओर के चिन्ह ज्यों का त्यों उतारो, परन्तु बाईं ओर गुरु चिन्ह लिख कर मात्राओं की संख्या पूरी करो। यदि एक की कसर रहे तो छोर पर का चिन्ह लघु करो जैसे सात मात्रा का प्रस्तार करना है तो '।ऽऽऽ' इस भाँति प्रथम पंक्ति में लिखो।

फिर आदि वाले गुरु के तले लघु लिखो और दाहिनी ओर के दोनों चिन्ह ज्यों के त्यों उतारें तो '।ऽऽ' इतनी पंक्ति बनी। अब दो मात्राओं की कसर है तो बाईं ओर 'ऽ' ऐसा चिन्ह लिखो यह दूसरी पंक्ति हो गई। जैसे—

।ऽऽऽ (१)

ऽ।ऽऽ (२)

अब फिर आदि वाले गुरु के तले लघु लिखकर शेष तीनों चिह्न ज्यों के त्यों उतारे तो 'IISS' इतनी पंक्ति बनो। इसमें मात्रा की कसर होने से लघु चिह्न बाई ओर लिख दिया। यथा–

ISSS (१)
SISS (२)
IIISS (३)

इसी प्रकार प्रस्तार करते जाओ जब सब लघु हो जायँ तब समझ लो कि प्रस्तार पूरा हो गया।

७ मात्रा का प्रस्तार इस प्रकार है—

(१) ISSS	(८) IIIIIS	(१५) SISII
(२) SISS	(९) SSSI	(१६) IIISII
(३) IIISS	(१०) IISSI	(१७) SSIII
(४) SSIS	(११) ISISI	(१८) IISIII
(५) IISIS	(१२) SISII	(१९) ISIIII
(६) IISIS	(१३) IIISI	(२०) SIIIII
(७) SIIIS	(१४) ISSII	(२१) IIIIIII

४ मात्रा का प्रस्तार इस प्रकार है—

(१) S (२) IIS (३) ISI
(४) SII (५) IIII

प्रश्न—७ मात्रा के प्रस्तार में ग्यारहवाँ रूप कैसा होगा?

उत्तर— I I I I I I I
१ २ ६ ५ ८ १३ २१

जितनो मात्रा का प्रस्तार हो उतने अंक इस तरह लिखो कि बाईं ओर १ और २ से आरम्भ करके, पहले दो अंको १ + २ का जोड़ तीसरा अंक ३, फिर पहले दो अंकों २ + ३ का जोड़ चौथा अंक ५, फिर ५ + ३ = ८ पांचवां अंक इत्यादि, इसी तरह ऊपर लिखे हुए ७ अंक मिले। इसी रीति से यह बढ़ाए भी जा सकते हैं।

अब २१ से ११ घटाये १० बचे, इस १० से १३ नहीं घटता तो ८ घटाये २ बचे, इस २ से ५ और ३ नहीं घटते तो २ घटाये शून्य बचा तो घटनेवाले अंक ८ और २ हैं। इसलिये इनके ऊपर के लघु अपने दक्षिण दिशावर्ती लघु को लेकर गुरु हो गये। शेष सब लघु रहे तो परिणाम यह हुआ—

। ऽ । ऽ ।।

१ २ ३ ५ ८ १३ २१

इसलिए उत्तर हुआ '।ऽ।ऽ।' ७ मात्रा के प्रस्तार में यह ११ वाँ भेद है।

प्रश्न—मात्रा उद्दिष्ट की रीति बतलाओ और उदाहरण दो।

उत्तर—प्रश्न वाले रूप के बराबर सब संख्या वाले अंक लिखो, इस तरह कि लघु चिन्हों के केवल ऊपर और गुरु चिन्हों के ऊपर भी नीचे भी; फिर गुरु के ऊपर के अंक जोड़ कर अन्त के अङ्क से घटाओ, जो बचे वही उत्तर है।

जैसे कोई प्रश्न करे कि '। ऽ ऽ ।' यह कौन सा भेद है, तो इस रूप के ऊपर-नीचे सारे संख्यावाले अंक लिखो, जैसे—

१ २ ५ १३
। ऽ ऽ ।
३ ८

फिर गुरु चिन्हों के ऊपर के अंक जोड़े तो २+५=७ हुआ। इसे १३ में से घटाया ६' रहा, तो ६ ही उत्तर है। छठवाँ रूप है।

११—मात्रा मेरु

प्रश्न—मात्रा मेरु बनाने की रीति बतलाओ। मात्रा मेरु से क्या जाना जाता है?

उत्तर—मात्रा मेरु से यह जाना जाता है कि नियत संख्या के मात्रा-प्रस्तार में कितने सर्व लघु, कितने एक गुरु, कितने द्विगुरु इत्यादि रूप होते हैं। उसके बनाने की विधि यह है कि—

जिस प्रकार वर्ण मेरु में कोठे बनाये जाते हैं, उसी भाँति मात्रा मेरु के कोठे भी बनाओ, परन्तु मात्रा मेरु में कोठों की दोहरी पंक्ति बनती है। इन कोठों के बनाने का क्रम ऊपर से आरम्भ करना चाहिये। सबसे ऊपर एक कोठा रहता है। नीचे का चक्र देखिए—

क, ख इत्यादि अक्षर रीति स्पष्ट करने के लिए लिखे गये हैं, जिससे पाठक जान लें कि अमुक कोष्ठ से अभिप्राय है।

१

१ क	१ ख
ग २	घ १

१ च	३ छ	ज १
३ झ	ट ४	ठ १

१ ड	६ ढ	५ त	थ १
द ४	ध १०	प ७	फ १

१	१०	१५	७	१
५	२०	२१	८	१

सब से ऊपर के कोठे में १ लिखो। यह तो विदित हो है कि १ मात्रा के प्रस्तार में १ ही भेद होगा। तत्पश्चात् जो दोहरी पंक्तिया हैं उनमें से प्रत्येक ऊपरवाली पंक्ति के आदि के कोठे में १ लिख दो और नीचेवाली पंक्तियों के आदि वाले कोठों में २, ३ इत्यादि लिख दो, और अन्त के, अर्थात् दाहिनी ओर के छोरवाले, प्रत्येक कोठे में १ लिखो। अब शेष कोठे इस प्रकार भरो कि, ख+ग=छ, घ+छ=ट, छ+झ+ढ, ज + ट=त, ट + ढ=ध, अर्थात् पाठशाला के नक़शों में जो दिशाओं का

नियम होता है उसके अनुसार, एक कोठे का अङ्क और उसके। नैऋत्यवाले कोठे का अङ्क जोड़कर उस नैऋत्यवाले कोठे में भरना चाहिए। जहाँ उस नैऋत्यवाले कोठे के तले दो कोठे हैं वहाँ दाहिने कोठे से अभिप्राय है, जैसे 'ज' और 'ट' का जोड़ 'त' में भरा जायगा 'ढ' में नहीं।

पेज ११२ के चक्र देखने से विदित होता है कि ७ मात्रा के प्रस्तार में १ सर्व लघु, ६ एक गुरु, १० द्विगुरु और ४ त्रिगुरु होते हैं।

पंक्ति में सब से अन्त का अङ्क सर्व लघु वाले भेद की संख्या बतलाता है; उसके बाईं ओर पास वाला अङ्क १ गुरु वाले भेदों की संख्या बतलाता है, आदि।

१२—एकावली-मात्रा-मेरु

प्रश्न—एकावली-मात्रा-मेरु कैसे बनाया जाता है ?

उत्तर—पहले एक कोष्ट बनाओ फिर उसके नीचे उतने ही बड़े-बड़े कोठों की दोहरी पंक्ति बनाओ, इस भाँति कि वह ऊपर वाले कोठे से दाहिनी ओर एक कोठे भर निकली रहे। फिर उसके नीचे तीन-तीन कोठों की दोहरी पंक्ति बनाओ। इसी क्रम से आवश्यकतानुसार बढ़ाओ, इस तरह कि बाईं ओर कोठों की सीढ़ी ऊपर से नीचे को बराबर रहती हैं। आगे का चक्र देखिए—

१ मात्रा	१				
२ ,,	१ क	१ ख			
३ ,,	ग १	२ घ			
४ ,,	१ च	३ छ	१ ज		
५ ,,	१ झ	४ ट	ठ ३		
६ ,,	१ ड	५ ढ	त ६	थ १	
७ ,,	१ द	६ ध	न १०	प १	
८ ,,	१ फ	७ ब	भ १५	१०	१
९ ,,	१	८	२१	२०	५

अंक भरने की विधि यह है कि प्रत्येक पंक्ति के आदि के कोठे में १ लिखो और जो दोहरी पंक्तियाँ हैं उनमें से ऊपर वाली पंक्ति के अन्तवाले कोठे में १ लिखो और नीचेवाली पंक्तियों के अन्तवाले कोठों में २, ३, ४, इत्यादि क्रमशः लिखो। अब कोठों में अङ्क भरने की यह विधि है कि एक कोठे और उसके आग्नेय कोण वाले कोठे दोनों के अङ्क जोड़कर उस आग्नेयवाले कोठे के नीचे जो कोठा है उसमें रक्खो। जैसे—क+घ+=छ, ग+छ—ट, च+ट=ढ, छ+ठ=त, इत्यादि।

उक्त चक्र से विदित हुआ कि ७ मात्रा के प्रस्तार में १ सर्व लघु, ६ एक गुरु, १० द्विगुरु, ४ त्रिगुरु होते हैं। एकावली चक्र में सर्वलघु, एक गुरु, इत्यादि का क्रम बाईं ओर से लगता है।

१३—खंडमेरु

प्रश्न—खंडमेरु की विधि बतलाओ। खंडमेरु का क्या उपयोग है?

उत्तर खंडमेरु से भी प्रस्तार के अन्तर्गत सर्वलघु, एक गुरु इत्यादि रूपों की संख्या जानी जाती है, परन्तु यह साधारण मेरु से और एकावली मेरु से भी जल्दी बनता है। उसकी विधि यह है कि जितनी मात्रा की संख्या हो उससे एक अधिक कोठे आड़ी पंक्ति में बनाये जायँ। उस के नीचे कोठों की ऐसी पंक्ति बनाई जाय कि जिसमें दो कोठे दाहिनी ओर कम रहें, अर्थात् ऊपरवाली पंक्ति नीचे वाली पंक्ति से दो कोठे अधिक निकली हुई रहे। इसी प्रकार दो दो कोठे करके क्रम से नीचे कोठे कम करके तब तक बनाये जायँ, जब तक सबके नीचे एक वा दो कोठे न बन जाँय।

क १	ख १	१ ग	घ १	च १	छ १	ज १	१ झ
ट १	ठ २	ड ३	ढ ४	त ५	थ ७		
द १	ध ३	प ६	फ १०				
ब १	भ ४						

कोठे भरने की विधि यह है कि प्रथम ऊपरवाली आड़ी पंक्ति में प्रत्येक कोठे में १ लिखो और बाईं ओर खड़ी पंक्ति में भी प्रत्येक कोठे में १ लिखो, फिर एक कोठे का अंक उसके नैर्ऋत्यवाले कोठे के अंक में जोड़कर इस नैर्ऋत्यवाले कोठे के

पूर्ववाले कोठे में रक्खो, जैसे ख+ट=ठ, ग+ठ=ड, ठ + द=ध, ड + ध = प, ध + व = भ इत्यादि।

अब प्रत्येक आड़ी पंक्ति के अंत में जो अंक हैं, झ, थ, फ, भ, वही उत्तर है।

खंडमेरु से भी जाना गया कि ७ मात्रा के प्रस्तार में १ सर्व लघु, ६ एक गुरु, १० द्विगुरु होते हैं और ४ त्रिगुरु होते हैं।

१४—मात्रा पताका

प्रश्न—मात्रा की पताका कैसे बनती है? उसका क्या उपयोग है?

उत्तर—मात्रा पताका का मात्रा-प्रस्तार में वही उपयोग है जो वर्ण-पताका का वर्ण-प्रस्तार में।

विधि—जितने मात्रा की पताका बनाना हो उतनी ही मात्रा वाली पंक्ति मात्रा-मेरु में से निकालकर आड़ी पंक्ति की भाँति लिखो। इसके नीचे खड़े कोठे बनाओ, फिर एक पृथक् स्थान पर समग्र संख्यावाले अंक, जिनको सूची के भी अंक कहते हैं, १, २, ३, इत्यादि लिखो। आड़ी पंक्ति में सबसे दाहिनी ओर १ रहता है, जिससे यह सूचित होता है कि १ भेद सर्वलघुवाला होता है। वह भेद सदैव अन्त का होता है इसलिए १ के नीचे सूची का अन्तिम अङ्क लिखो। तत्पश्चात् एक गुरुवाले खड़े

कोठे को इस भाँति भरो; सूचीवाले अन्तिम अङ्क में से शेष अङ्क एक-एक करके घटाओ, जो बचे उसे कोठे में से नीचे रखते चलो, इसी प्रकार द्विगुरुवाला कोठा उसी अन्तिम अङ्क से दो-दो अङ्कों का जोड़ घटा-घटा कर भरा जायगा और त्रिगुरुवाला कोठा तीन-तीन अङ्कों का जोड़ घटाकर । इसी क्रम से शेष कोठों को भरो । इतना विचार चाहिए कि आया हुआ अंक त्याग दिया जाता है ।

जैसे, ७ मात्रा की पताका बनाना है तो प्रथम ७ मात्रा का खण्ड-मेरु आड़ी पंक्ति में लिखो । फिर सूची के अङ्क १, २, ३, ५, ८, १३, २१ अलग काग़ज़ पर लिखो, सर्व लघुवाले कोठे को नीचे से यों प्रारम्भ करो—२१—१=२०, २१—२=१९, २१—३=१८......२१—१३=८ । द्विगुरु वाला कोठा नीचे से इस भाँति भरो—२१—(१ + १)=१८, २१—(१+३)=१७, २१—(१+५)=१५......२१—(२+३)=१६, २१=(२+५)=१४...२१—(३+५)=१३, २१—(३+८) १०, २१—(३+१३) =५ .....२१—(५+८)=८, २१—(५+१३)= ३।

त्रिगुरु वाला कोठा तीन-तीन अङ्कों का जोड़ घटाकर इस भाँति भरो—२१—(१+२+३)=१५, २१— (१+२+५) =१३, २१—(१+३+५)=१२, २१—(१+३+८)=९, २१—(१+३+१३)=४, २१—(१+५+८)=७, २१—(१+५+१३)=२...।

आए हुए अङ्क त्याग दिए जायँगे, जैसे द्विगुरु कोठे में १८ न भरा जावेगा क्योंकि वह एक गुरु वाले कोठे में आ चुका है।

सात मात्रा की पताका इस प्रकार है—

त्रिगुरु ४	द्विगुरु १०	एकगुरु ६	सर्वलघु १
१	३	८	२१
२	५	१३	
४	६	१६	
७	७	१६	
	१०	१८	
	११	१९	
	१२	२०	
	१४		
	१५		
	१७		

दूसरी विधि—प्रथम सूची के अंक १, २, ३, ५...नीचे से ऊपर को लिख आओ, जैसे नीचे की 'ख' पंक्ति में फिर खण्ड-मेरु के अंक ऊपर से नीचे को सूची के अंक एक बीच में छोड़-कर बाईं ओर लिखो जैसे 'क' पंक्ति में। इन अंकों के बराबर आवश्यकतानुसार आड़े कोठे बना लो जैसे 'ग' पंक्ति ६ कोठों की। 'घ' पंक्ति १० कोठों की और 'च' पंक्ति ४ कोठों की। अब "ग" पंक्ति के कोठे २१ में से ८, ५, ३ इत्यादि घटा घटा कर भरो, और 'घ' पंक्ति के कोठे ८ से ३, २, १ घटा-घटाकर। फिर ८ के दाहिनी ओर वाले १३, १६ इत्यादि से वही ३, २, १ घटा-घटा कर भरो। इसी क्रम से चक्र से चक्र पूरा करो। पहले की भाँति जो अङ्क पहले आ चुके हैं वे फिर नहीं लिखे जायँगे। जब सम मात्रा की पताका होगी तो 'ख' पंक्ति के '१' के बराबर 'क' पंक्ति का '१' पड़ेगा।

७ मात्रा की पताका इस प्रकार है—

	क	ख							
सर्वलघु	१	२१							
		१३							
एक गुरु	६	८	१३	१६	१८	१९	२० ग		
		५							
द्वि गुरु	३	५	१०	११	१२	१३	१४	१५	१७ घ
		२							
त्रिगुरु	४	१	२	४	९ च				

आठ मात्रा की पताका इस प्रकार है —

सर्वलघु | १ | ३४

| २१

एकगुरु | ७ | १३ | २१ | २६ | २९ | ३१ | ३२ | ३३

| ८

द्विगुरु | १५ | ५ | ८ | १० | ११ | १० | १६ | १८ | १० | २० | २१ | २२ | २३ | २४ | २५

३ | २७ | २८ | ३०

त्रिगुरु | १० | २ | ३ | ४ | ६ | ७ | ९ | १४५५ | १७ | २२

चतुर्गुरु | | १ | १

१५—मात्रा मर्कटी

प्रश्न—मात्रा मर्कटी की विधि और उपयोग बतलाओ।

उत्तर—उपयोग के लिए वर्ण-मर्कटी का प्रकरण देखना चाहिए।

विधि—मात्रा मर्कटी में सात खड़े कोठे होंगे। १. मात्रा (कला) २. भेद संख्या (अर्थात भेदों की समग्र संख्या) ३. सर्वकला-संख्या ४, गुरु संख्या, ५, लघु संख्या. ६, वर्ण-संख्या, ७, पिण्ड।

पहले आड़े कोठों में १, २, ३ इत्यादि लिखो। दूसरे कोठों में सूची के अङ्क १, २, ३, ५, ८ इत्यादि भरो। तीसरा कोठा पहले इस भाँति भरो कि पहले शून्य; फिर १, फिर १ दूने २ को इस १ के ऊपरवाले ४ से घटाकर २ लिखे, फिर इसके दूने ४ को इसी २ के ऊपर वाले ९ से घटाकर लिखना चाहिए। इसी

प्रकार प्राप्त अङ्क का दूना उस प्राप्त अङ्क के ऊपरवाले अङ्क से घटाकर लिखते जाओ। पाँचवाँ कोठा इस भाँति भरो कि चौथे कोठे के अङ्क दूने करके तीसरे कोठे के अङ्क में से घटाओ। छठवें कोठे में चौथे पांचवें का जोड़ भरो।

कोई-कोई सातवाँ कोठा पिण्ड का रखते हैं। उसमें तीसरे कोठे का आधा लिखते हैं, परन्तु पहले घर में शून्य लिखते हैं।

११ मात्रा की मर्कटी इस प्रकार है—

१. कला	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
२. भेद	१	२	३	५	८	१३	२१	३४	५५	८९	१४४
३. सर्वकला	१	४	९	२०	४०	७८	१४८	२७२	४९५	८९०	१५८४
४. गुन	०	१	२	५	१०	२०	३८	७१	१३०	२३५	४२०
५. लघु	१	२	५	१०	२०	३८	७१	१३०	२३५	४२०	७४०
६. वर्ण	१	३	५	१५	३०	५८	१०९	२०१	३६६	६२५	११६०
७. पिण्ड	०	२	४॥	१०	२०	३९	७३॥	१६३	२७४॥	४४५	७९२

१६—प्रस्तार के मत

प्रस्तार की जो रीति यहाँ तक लिखी गई है वह नाग मत के अनुसार है। प्रस्तार के तीन अन्य मत भी हैं, अर्थात् जैन मत, यवन मत और भरत मत। ये चार मत केवल विधि-क्रम में पृथक् हैं, सिद्धान्त सब का एक ही है।

१७—जैन-मत-प्रस्तार

जैन मत से प्रस्तार सर्व गुरु लिखकर प्रारम्भ करते हैं। भेद इतना है कि नाग-मत से बाएँ छोर के गुरु के नीचे लघु

लिखकर शेष दाहिने ओर के चिन्ह ज्यों के त्यों उतारते हैं और बाईं ओर की कमी को गुरु लिखकर पूरी करते हैं, परन्तु जैन-मत से दाहिनी ओर के गुरु के नीचे लघु लिखते हैं और बाईं ओर के गुरु ज्यों के त्यों उतारते हैं, और दाहिनी ओर की कमी गुरु लिख पूरी करते हैं।

यदि नाग मत से प्रस्तार को अच्छी तरह समझ लिया जाय तो अन्य मत से प्रस्तार करने में कोई कठिनता न होगी।

३ वर्ण का प्रस्तार	४ मात्रा का प्रस्तार	५ मात्रा का प्रस्तार
SSS	SS	SSI
SSI	SSII	SIS
SIS	IS	SIII
SII	IIS	ISS
ISS	III	ISII
ISI		IISI
IIS		IIIS
III		IIIII

विषम मात्रा में तो एक मात्रा अधिक पड़ती है, उसका लघु चिह्न दाहिने छोर में लिखना चाहिए।

१८—यवन-मत-प्रस्तार

यवन-मत से प्रस्तार सर्वलघु लिखकर और दाहिनी ओर प्रारम्भ किया जाता है। अर्थात् सब से दाहिनी ओर के

लघु के नीचे गुरु लिखकर बाईं ओर के चिन्ह ज्यों के त्यों उतारते जाते हैं, और दाहिनी ओर लघु चिन्हों से संख्या पूरी करते हैं।

३ वर्ण का प्रस्तार	४ मात्रा का प्रस्तार	५ मात्रा का प्रस्तार
III	IIII	IIIII
IIS	IIS	IIIS
ISI	ISI	IISI
ISS	SS	ISII
SII		ISS
SIS		SIII
SSI		SIS
SSS		SSI

यहाँ ध्यान देने योग्य दो बातें इस प्रकार हैं—

१—यवन-मत से मात्रा प्रस्तार करने में ध्यान रक्खो कि जब जब किसी पंक्ति में दाहिना ओर में एक ही लघु होगा तो उसके नीचे गुरु नहीं लिखा जायगा, वरन् उसके बाईं ओर वाले गुरु को नाँघ कर जो लघु होगा उसके नीचे गुरु लिखा जायगा और उसके बाईं ओर के चिन्ह ज्यों के त्यों उतार कर दाहिनी ओर लघु-चिन्हों से मात्रा-संख्या पूरी की जायगी। देखो ५ मात्रा के प्रस्तार में तीसरी पंक्ति के नीचे चौथी पंक्ति।

२—दाहिनी ओर के दो लघु के नीचे एक गुरु लिखा जाता है। देखो ५ मात्रा के प्रस्तार में चौथी पंक्ति के नीचे पाँचवी पंक्ति।

६ मात्रा का प्रस्तार देखिए—

IIIIII	ISSI
IIIIS	SIIII
IIISII	SIIS
ISII	SISI
IISS	SSII
ISIII	SSS

तीसरी पंक्ति से चौथी कैसे बनी इसके लिये देखो ऊपर का प्रथम नम्बर तथा चौथी से पांचवीं कैसे बनी, इसके लिये देखो दूसरा नम्बर।

नाग मत प्रस्तार का उलटा यवन मत प्रस्तार है। काग़ज़ घुमाकर यदि नीचे की ओर से ऊपर को यवन मत प्रस्तार पढ़ा जाय तो स्पष्ट नाग मत का क्रम हो जाता है।

१९—भरत-मत-प्रस्तार

जिस तरह यवन-मत-प्रस्तार, नाग-मत-प्रस्तार का सब भाँति उलटा है उसी तरह जैन-मत-प्रस्तार का उलटा भरत-मत-प्रस्तार है।

२०—वर्ण-प्रस्तार

प्रथम सर्वलघु लिखो और बाईं ओर से प्रस्तार प्रारम्भ करो अर्थात् लघु के नीचे गुरु लिखो और दाहिनी ओर के चिन्ह ज्यों के त्यों उतारो और बाईं ओर की कमी लघु-चिन्हों से पूरी करो।

चार वर्ण का प्रस्तार इस प्रकार है—

IIII
SIII
ISII
SSII
IISI
SISI

ISSI
SSSI
ISSS
SIIS
ISIS
SSIS

IISS
SISS
ISSS
SSSS

२१—मात्रा-प्रस्तार

प्रथम सर्वलघु लिखो, बाईं ओर से प्रस्तार प्रारम्भ करो, बाईं ओर पंक्ति के छोर में जो लघु हो उसे छोड़ दो, उसके दाहिनी ओर जो लघु हो उसके नीचे गुरु लिखो और दाहिनी ओर के चिन्ह ज्यों के त्यों उतारो और बाईं ओर मात्रा-संख्या पूरी करने को लघु चिह्न लिखो।

मात्रा का प्रस्तार

IIII
SII
ISI
IIS
SS

५ मात्रा का प्रस्तार

IIIII
SIII
ISII
IISI
SSI
IIIS
SIS
ISS

विषम संख्या के प्रस्तार में जब सर्वगुरु और एक लघु बाईं ओर आवे तब प्रस्तार समाप्त समझना चाहिए।

उपसंहार

इस प्रकार प्रस्तार के संबंध में पूरी जानकारी हो जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि छंदों की संख्या अनेक हो सकती हैं और नए कवि आये दिन नये छंदों का रचना करने में समर्थ हो रहे हैं। इससे यह भी स्पष्ट विदित होता है कि किसी भाषा में कोई ऐसा शब्द छंद नहीं हो सकता जो प्रस्तारों के अन्तर्गत नहीं हो सकता। इससे प्रकट होता है कि पिंगल की रीति मात्र वैज्ञानिक है।

आज वर्तमान काल में अनेक कवि ऐसे सुन्दर उत्पन्न हो गए हैं जो पिंगल के अन्तर्गत छंदों के सिवा नवीन-नवीन छंद में रचना करते हैं। पं॰ नाथूरामशंकर शर्मा ने अपनी रचनाओं में नवीनता उत्पन्न की है। उनके छंद चाहे वार्णिक हों या मात्रिक उनमें वर्ण और मात्रा दोनों समान होती हैं । इसके सिवा 'मिलिन्द पाद' का, 'राजगीत' आदि कितने ही नए छंदों का आविष्कार करके उनके नाम भी निर्धारित कर दिये हैं जिनका

पिंगल शास्त्र में कहीं पता नहीं है। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी अनेक नए छंदों का आविष्कार किया है। 'चौपदे' 'चतुर्दशपदी' आदि छंदों का नामकरण भी आपने किया है। बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त ने पहले पिंगल के अनुरूप ही छंदों में रचनायें की थीं परन्तु इस समय उन्होंने ऐसे छंदों में रचनायें की हैं जिनका पिंगल में कहीं पता नहीं है। इसी प्रकार अन्य कई कवि और भी हैं जो एक दम नए छंदों में रचनाकर रहे हैं।

वर्तमान काल के इस छायावाद के युग में—जब कि हिन्दी के काव्य-जगत में एक नवीन लहर का प्रवाह हो रहा है—अनेक छंदों का आविष्कार हुआ है और हो रहा है—जो पढ़ने, सुनने में सुन्दर और भाव पूर्ण हैं। परन्तु वे छंद भी एक सीमा के अन्तर्गत हैं और एक बंधन में बंधे हुए हैं परन्तु न तो अभी उनका नामकरण हुआ है, और न उनके नियम के संबंध में ही किसी ने बतलाया है। पं० सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला' और बाबू जयशंकरप्रसाद इस क्षेत्र में अग्र गण्य हैं। निरालाजी ने तो एक ख़ास ढंग के अतुकान्त छंदों का आविष्कार किया है। इस प्रकार छंदों की संख्या जितनी पिंगल के आचार्यों ने अब तक निर्धारित की हैं—कहीं अधिक बढ़ गई हैं। हमारा विचार है कि भविष्य में हमारे साहित्य पर विदेशी भाषाओं का ज्यों-ज्यों प्रभाव पड़ता जायगा त्यों-त्यों छंदों की संख्या बढ़ती जायगी।

जो स्वाभाविक कवि होते हैं उनकी तो बात ही दूसरी है। परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि जो कवि बनना चाहते हैं उनको पिंगल संबंधी प्रारंभिक जानकारी अवश्य करनी पड़ेगी। नहीं तो वे कवि नहीं हो सकते, और ऐसों की संख्या अधिक है जो ज्ञानवर्द्धन के साथ-साथ कवि और लेखक बनते हैं। इसलिए प्रत्येक काव्यप्रेमी को जिसकी रुचि कविता बनाने की ओर हो उसे पिंगल शास्त्र का अवश्य अध्ययन करना चाहिए। इसलिए विद्यार्थियों को प्रारंभिक काव्य-ज्ञान के लिए पिंगल अवश्य पढ़ना चाहिए।

